॥ सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी विरचित

श्रीरामचरितमानस

[लङ्काकाण्ड]

(सटीक)



टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं०	२०१८	से	२०२०	तक	२०,०००
सं०	२०२१	पाँचवाँ		संस्करण	५,०००
सं०	२०२४	छठाँ		संस्करण	१५,०००
				कुल	५०,०००
					पचास हजार

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

|| श्रीहरिः ||

विषय-सूची



श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

षष्ठ सोपान

लंकाकाण्ड

श्लोक

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥ १॥

कामदेवके शत्रु शिवजीके सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु) के भयको हरनेवाले, कालरूपी मतवाले हाथीके लिये सिंहके समान, योगियोंके स्वामी (योगीश्वर), ज्ञानके द्वारा जानने योग्य, गुणोंकी निधि, अजेय, निर्गुण, निर्विकार, मायासे परे, देवताओंके स्वामी, दुष्टोंके वधमें तत्पर, ब्राह्मणवृन्दके एकमात्र देवता (रक्षक), जलवाले मेघके समान सुन्दर श्याम, कमलके-से नेत्रवाले, पृथ्वीपति (राजा) के रूपमें परमदेव श्रीरामजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

शङ्खेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्कप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम्॥ २॥

शङ्ख और चन्द्रमाकी-सी कान्तिके अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, व्याघ्रचर्मके वस्त्रवाले, कालके समान [अथवा काले रंगके] भयानक सर्पोंका भूषण धारण करनेवाले, गङ्गा और चन्द्रमाके प्रेमी, काशीपति, कलियुगके पापसमूहका नाश करनेवाले, कल्याणके

कल्पवृक्ष, गुणोंके निधान और कामदेवको भस्म करनेवाले पार्वतीपति वन्दनीय श्रीशंकरजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे॥ ३ ॥

जो सत्पुरुषोंको अत्यन्त दुर्लभ कैवल्यमुक्तितक दे डालते हैं और जो दुष्टोंको दण्ड देनेवाले हैं, वे कल्याणकारी श्रीशम्भु मेरे कल्याणका विस्तार करें ॥ ३ ॥

दो०—लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प—जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, हे मन! तू उन श्रीरामजीको क्यों नहीं भजता ?

सो०—सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु॥

समुद्रके वचन सुनकर प्रभु श्रीरामजीने मन्त्रियोंको बुलाकर ऐसा कहा—अब विलम्ब किसलिये हो रहा है? सेतु (पुल) तैयार करो, जिसमें सेना उतरे।

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥

जाम्बवान्‌ने हाथ जोड़कर कहा—हे सूर्यकुलके ध्वजास्वरूप (कीर्तिको बढ़ानेवाले) श्रीरामजी! सुनिये! हे नाथ! [सबसे बड़ा] सेतु तो आपका नाम ही है, जिसपर चढ़कर (जिसका आश्रय लेकर) मनुष्य संसाररूपी समुद्रसे पार हो जाते हैं।

चौ०—यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥ १ ॥

फिर यह छोटा-सा समुद्र पार करनेमें कितनी देर लगेगी? ऐसा सुनकर फिर पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीने कहा—प्रभुका प्रताप भारी बड़वानल (समुद्रकी आग) के समान है। इसने पहले समुद्रके जलको सोख लिया था॥ १ ॥

तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा॥
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥ २ ॥

परंतु आपके शत्रुओंकी स्त्रियोंके आँसुओंकी धारासे यह फिर भर गया और उसीसे खारा भी हो गया। हनुमान्‌जीकी यह अत्युक्ति (अलङ्कारपूर्ण युक्ति) सुनकर वानर श्रीरघुनाथजीकी ओर देखकर हर्षित हो गये॥ २ ॥

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥ ३ ॥

जाम्बवान्‌ने नल-नील दोनों भाइयोंको बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनायी

[और कहा—] मनमें श्रीरामजीके प्रतापको स्मरण करके सेतु तैयार करो, [रामप्रतापसे] कुछ भी परिश्रम नहीं होगा ॥ ३ ॥

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी॥
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥ ४॥

फिर वानरोंके समूहको बुला लिया [और कहा—] आप सब लोग मेरी कुछ विनती सुनिये। अपने हृदयमें श्रीरामजीके चरण-कमलोंको धारण कर लीजिये और सब भालू और वानर एक खेल कीजिये ॥ ४ ॥

धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा॥ ५॥

विकट वानरोंके समूह (आप) दौड़ जाइये और वृक्षों तथा पर्वतोंके समूहोंको उखाड़ लाइये। यह सुनकर वानर और भालू हूह (हुंकार) करके और श्रीरघुनाथजीके प्रताप-समूहकी [अथवा प्रतापके पुञ्ज श्रीरामजीकी] जय पुकारते हुए चले ॥ ५ ॥

दो०—अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥ १॥

बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षोंको खेलकी तरह ही [उखाड़कर] उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नीलको देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़कर [सुन्दर] सेतु बनाते हैं ॥ १ ॥

चौ०—सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं॥
देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥ १॥

वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं और नल-नील उन्हें गेंदकी तरह ले लेते हैं। सेतुकी अत्यन्त सुन्दर रचना देखकर कृपासिन्धु श्रीरामजी हँसकर वचन बोले—॥ १ ॥

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥ २॥

यह (यहाँकी) भूमि परम रमणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिवजीकी स्थापना करूँगा। मेरे हृदयमें यह महान् संकल्प है ॥ २ ॥

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥ ३॥

श्रीरामजीके वचन सुनकर वानरराज सुग्रीवने बहुत-से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियोंको बुलाकर ले आये। शिवलिङ्गकी स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया। [फिर भगवान् बोले—] शिवजीके समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है ॥ ३ ॥

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥ ४॥

जो शिवसे द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्नमें भी मुझे नहीं पाता। शंकरजीसे विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है ॥ ४ ॥

दो०—संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ॥ २ ॥

जिनको शंकरजी प्रिय हैं, परंतु जो मेरे द्रोही हैं, एवं जो शिवजीके द्रोही हैं और मेरे दास [बनना चाहते] हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरकमें निवास करते हैं ॥ २ ॥

चौ०—जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि ॥ १ ॥

जो मनुष्य [मेरे स्थापित किये हुए इन] रामेश्वरजीका दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोकको जायँगे। और जो गङ्गाजल लाकर इनपर चढ़ावेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पावेगा (अर्थात् मेरे साथ एक हो जायगा) ॥ १ ॥

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही ॥ २ ॥

जो छल छोड़कर और निष्काम होकर श्रीरामेश्वरजीकी सेवा करेंगे, उन्हें शंकरजी मेरी भक्ति देंगे। और जो मेरे बनाये सेतुका दर्शन करेगा, वह बिना ही परिश्रम संसाररूपी समुद्रसे तर जायगा ॥ २ ॥

राम बचन सब के जिय भाए। मुनिबर निज निज आश्रम आए ॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके वचन सबके मनको अच्छे लगे। तदनन्तर वे श्रेष्ठ मुनि अपने-अपने आश्रमोंको लौट आये। [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! श्रीरघुनाथजीकी यह रीति है कि वे शरणागतपर सदा प्रीति करते हैं ॥ ३ ॥

बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर ॥
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई ॥ ४ ॥

चतुर नल और नीलने सेतु बाँधा। श्रीरामजीकी कृपासे उनका यह [उज्ज्वल] यश सर्वत्र फैल गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरोंको डुबा देते हैं, वे ही जहाजके समान [स्वयं तैरनेवाले और दूसरोंको पार ले जानेवाले] हो गये ॥ ४ ॥

महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी ॥ ५ ॥

यह न तो समुद्रकी महिमा वर्णन की गयी है, न पत्थरोंका गुण है और न वानरोंकी ही कोई करामात है ॥ ५ ॥

दो०—श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥ ३ ॥

श्रीरघुवीरके प्रतापसे पत्थर भी समुद्रपर तैर गये। ऐसे श्रीरामजीको छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामीको जाकर भजते हैं, वे [निश्चय ही] मन्दबुद्धि हैं ॥ ३ ॥

चौ०—बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा ॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई ॥ १ ॥

नल-नीलने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया। देखनेपर वह कृपानिधान श्रीरामजीके मनको [बहुत ही] अच्छा लगा। सेना चली, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। योद्धा वानरोंके समुदाय गरज रहे हैं ॥ १ ॥

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई ॥
देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा ॥ २ ॥

कृपालु श्रीरघुनाथजी सेतुबन्धके तटपर चढ़कर समुद्रका विस्तार देखने लगे। करुणाकन्द (करुणाके मूल) प्रभुके दर्शनके लिये सब जलचरोंके समूह प्रकट हो गये (जलके ऊपर निकल आये) ॥ २ ॥

मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला ॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं ॥ ३ ॥

बहुत तरहके मगर, नाक (घड़ियाल), मच्छ और सर्प थे, जिनके सौ-सौ योजनके बहुत बड़े विशाल शरीर थे। कुछ ऐसे भी जन्तु थे, जो उनको भी खा जायँ। किसी-किसीके डरसे तो वे भी डर रहे थे ॥ ३ ॥

प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे ॥
तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी ॥ ४ ॥

वे सब [वैर-विरोध भूलकर] प्रभुके दर्शन कर रहे हैं, हटानेसे भी नहीं हटते। सबके मन हर्षित हैं, सब सुखी हो गये। उनकी आड़के कारण जल नहीं दिखायी पड़ता। वे सब भगवान्‌का रूप देखकर [आनन्द और प्रेममें] मग्न हो गये ॥ ४ ॥

चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई ॥ ५ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर सेना चली। वानर-सेनाकी विपुलता (अत्यधिक संख्या) को कौन कह सकता है? ॥ ५ ॥

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ॥ ४ ॥

सेतुबंधपर बड़ी भीड़ हो गयी, इससे कुछ वानर आकाशमार्गसे उड़ने लगे और दूसरे [कितने ही] जलचर जीवोंपर चढ़-चढ़कर पार जा रहे हैं ॥ ४ ॥

चौ०—अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई ॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥ १ ॥

कृपालु रघुनाथजी [तथा लक्ष्मणजी] दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसते हुए

चले। श्रीरघुवीर सेनासहित समुद्रके पार हो गये। वानरों और उनके सेनापतियोंकी भीड़ कही नहीं जा सकती॥ १॥

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए॥ २॥

प्रभुने समुद्रके पार डेरा डाला और सब वानरोंको आज्ञा दी कि तुम जाकर सुन्दर फल-मूल खाओ। यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े॥ २॥

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलावहिं॥ ३॥

श्रीरामजीके हित (सेवा) के लिये सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु—समयकी गतिको छोड़कर फल उठे। वानर-भालू मीठे-मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षोंको हिला रहे हैं और पर्वतोंके शिखरोंको लङ्काकी ओर फेंक रहे हैं॥ ३॥

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना॥ ४॥

घूमते-फिरते जहाँ कहीं किसी राक्षसको पा जाते हैं तो सब उसे घेरकर खूब नाच नचाते हैं और दाँतोंसे उसके नाक-कान काटकर प्रभुका सुयश कहकर [अथवा कहलाकर] तब उसे जाने देते हैं॥ ४॥

जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दस मुख बोलि उठा अकुलाना॥ ५॥

जिन राक्षसोंके नाक और कान काट डाले गये, उन्होंने रावणसे सब समाचार कहा। समुद्र [पर सेतु] का बाँधा जाना कानोंसे सुनते ही रावण घबड़ाकर दसों मुखोंसे बोल उठा—॥ ५॥

दो०—बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥ ५॥

वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीशको क्या सचमुच ही बाँध लिया?॥ ५॥

चौ०—निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी॥
मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥ १॥

फिर अपनी व्याकुलताको समझकर [ऊपरसे] हँसता हुआ, भयको भुलाकर, रावण महलको गया। [जब] मन्दोदरीने सुना कि प्रभु श्रीरामजी आ गये हैं और उन्होंने खेलमें ही समुद्रको बँधवा लिया है,॥ १॥

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥ २॥

[तब] वह हाथ पकड़कर, पतिको अपने महलमें लाकर परम मनोहर वाणी बोली। चरणोंमें सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा—हे प्रियतम ! क्रोध त्यागकर मेरा वचन सुनिये ॥ २ ॥

नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों ॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा ॥ ३ ॥

हे नाथ ! वैर उसीके साथ करना चाहिये जिससे बुद्धि और बलके द्वारा जीत सके। आपमें और श्रीरघुनाथजीमें निश्चय ही कैसा अन्तर है, जैसा जुगनू और सूर्यमें ! ॥३॥

अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे ॥
जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ॥ ४ ॥

जिन्होंने [विष्णुरूपसे] अत्यन्त बलवान् मधु और कैटभ [दैत्य] मारे और [वाराह और नृसिंहरूपसे] महान् शूरवीर दितिके पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया; जिन्होंने [वामनरूपसे] बलिको बाँधा और [परशुरामरूपसे] सहस्रबाहुको मारा, वे ही [भगवान्] पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये [रामरूपमें] अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं ! ॥ ४ ॥

तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा ॥ ५ ॥

हे नाथ ! उनका विरोध न कीजिये, जिनके हाथमें काल, कर्म और जीव सभी हैं ॥ ५ ॥

दो०—रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ ॥ ६ ॥

[श्रीरामजीके] चरणकमलोंमें सिर नवाकर (उनकी शरणमें जाकर) उनको जानकीजी सौंप दीजिये और आप पुत्रको राज्य देकर वनमें जाकर श्रीरघुनाथजीका भजन कीजिये ॥ ६ ॥

चौ०—नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गएँ न खाई ॥
चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते ॥ १ ॥

हे नाथ ! श्रीरघुनाथजी तो दीनोंपर दया करनेवाले हैं। सम्मुख (शरण) जानेपर तो बाघ भी नहीं खाता। आपको जो कुछ करना चाहिये था, वह सब आप कर चुके। आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर सभीको जीत लिया ॥ १ ॥

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन ॥
तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता ॥ २ ॥

हे दशमुख ! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन (बुढ़ापे) में राजाको वनमें चला जाना चाहिये। हे स्वामी ! वहाँ (वनमें) आप उनका भजन कीजिये, जो सृष्टिके रचनेवाले, पालनेवाले और संहार करनेवाले हैं ॥ २ ॥

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी । भजहु नाथ ममता सब त्यागी ॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी । भूप राजु तजि होहिं बिरागी ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आप विषयोंकी सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागतपर प्रेम करनेवाले भगवान्‌का भजन कीजिये । जिनके लिये श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं और राजा राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं—॥ ३ ॥

सोइ कोसलाधीस रघुराया । आयउ करन तोहि पर दाया ॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन । सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन ॥ ४ ॥

वही कोसलाधीश श्रीरघुनाथजी आपपर दया करने आये हैं । हे प्रियतम ! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यन्त पवित्र और सुन्दर यश तीनों लोकोंमें फैल जायगा ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात ।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर, नेत्रोंमें [करुणाका] जल भरकर और पतिके चरण पकड़कर काँपते हुए शरीरसे मन्दोदरीने कहा—हे नाथ ! श्रीरघुनाथजीका भजन कीजिये, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाय ॥ ७ ॥

चौ०—तब रावन मयसुता उठाई । कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना । जग जोधा को मोहि समाना ॥ १ ॥

तब रावणने मन्दोदरीको उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा—हे प्रिये ! सुन, तूने व्यर्थ ही भय मान रक्खा है । बता तो जगत्‌में मेरे समान योद्धा है कौन ? ॥ १ ॥

बरुन कुबेर पवन जम काला । भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला ॥
देव दनुज नर सब बस मोरें । कवन हेतु उपजा भय तोरें ॥ २ ॥

वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालोंको तथा कालको भी मैंने अपनी भुजाओंके बलसे जीत रक्खा है । देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वशमें हैं । फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया ? ॥ २ ॥

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई । सभाँ बहोरि बैठ सो जाई ॥
मंदोदरीं हृदयँ अस जाना । काल बस्य उपजा अभिमाना ॥ ३ ॥

मन्दोदरीने उसे बहुत तरहसे समझाकर कहा [किंतु रावणने उसकी एक भी बात न सुनी] और वह फिर सभामें जाकर बैठ गया । मन्दोदरीने हृदयमें ऐसा जान लिया कि कालके वश होनेसे पतिको अभिमान हो गया है ॥ ३ ॥

सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा । करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा ॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा । बार बार प्रभु पूछहु काहा ॥ ४ ॥

सभामें आकर उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि शत्रुके साथ किस प्रकारसे युद्ध करना होगा? मन्त्री कहने लगे—हे राक्षसोंके नाथ! हे प्रभु! सुनिये, आप बार-बार क्या पूछते हैं? ॥ ४ ॥

कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा ॥ ५ ॥

कहिये तो [ऐसा] कौन-सा बड़ा भय है, जिसका विचार किया जाय? (भयकी बात ही क्या है?) मनुष्य और वानर-भालू तो हमारे भोजन [की सामग्री] हैं ॥ ५ ॥

दो०—सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥ ८ ॥

कानोंसे सबके वचन सुनकर [रावणका पुत्र] प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा—हे प्रभु! नीतिके विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिये, मन्त्रियोंमें बहुत ही थोड़ी बुद्धि है ॥ ८ ॥

चौ०—कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा ॥ १ ॥

ये सभी मूर्ख (खुशामदी) मन्त्री ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) कह रहे हैं। हे नाथ! इस प्रकारकी बातोंसे पूरा नहीं पड़ेगा। एक ही बंदर समुद्र लाँघकर आया था। उसका चरित्र सब लोग अब भी मन-ही-मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते हैं)! ॥ १ ॥

छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू ॥
सुनत नीक आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा ॥ २ ॥

उस समय तुमलोगोंमेंसे किसीको भूख न थी? [बंदर तो तुम्हारा भोजन ही हैं, फिर] नगर जलाते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया? इन मन्त्रियोंने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनायी है जो सुननेमें अच्छी है, पर जिससे आगे चलकर दुःख पाना होगा ॥ २ ॥

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला ॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई ॥ ३ ॥

जिसने खेल-ही-खेलमें समुद्र बँधा लिया और जो सेनासहित सुबेल पर्वतपर आ उतरा। हे भाई! कहो वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे? सब गाल फुला-फुलाकर (पागलोंकी तरह) वचन कह रहे हैं! ॥ ३ ॥

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर ॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥ ४ ॥

हे तात! मेरे वचनोंको बहुत आदरसे (बड़े गौरसे) सुनिये। मुझे मनमें कायर न समझ लीजियेगा! जगत्में ऐसे मनुष्य झुंड-के-झुंड (बहुत अधिक) हैं, जो प्यारी (मुँहपर मीठी लगनेवाली) बात ही सुनते और कहते हैं ॥ ४ ॥

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती ॥ ५ ॥

हे प्रभो! सुननेमें कठोर परंतु [परिणाममें] परम हितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं। नीति सुनिये, [उसके अनुसार] पहले दूत भेजिये और [फिर] सीताको देकर श्रीरामजीसे प्रीति (मेल) कर लीजिये ॥ ५ ॥

दो०—नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि ॥ ९ ॥

यदि वे स्त्री पाकर लौट जायँ, तब तो [व्यर्थ] झगड़ा न बढ़ाइये। नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात! सम्मुख युद्ध-भूमिमें उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिये ॥ ९ ॥

चौ०—यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई ॥ १ ॥

हे प्रभो! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत्‌में दोनों ही प्रकारसे आपका सुयश होगा। रावणने गुस्सेमें भरकर पुत्रसे कहा—अरे मूर्ख! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखायी? ॥ १ ॥

अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा ॥ २ ॥

अभीसे हृदयमें सन्देह (भय) हो रहा है? हे पुत्र! तू तो बाँसकी जड़में घमोई हुआ (तू मेरे वंशके अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ)। पिताकी अत्यन्त घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त ये कड़े वचन कहता हुआ घरको चला गया ॥ २ ॥

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुँ भेषज जैसें ॥
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा ॥ ३ ॥

हितकी सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आपपर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्युके वश हुए [रोगी] को दवा नहीं लगती। सन्ध्याका समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओंको देखता हुआ महलको चला ॥ ३ ॥

लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन ॥ ४ ॥

लङ्काकी चोटीपर एक अत्यन्त विचित्र महल था। वहाँ नाच-गानका अखाड़ा जमता था। रावण उस महलमें जाकर बैठ गया। किन्नर उसके गुण-समूहोंको गाने लगे ॥ ४ ॥

बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ॥ ५ ॥

ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और वीणा बज रहे हैं। नृत्यमें प्रवीण अप्सराएँ नाच रही हैं ॥ ५ ॥

दो०—सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास॥ १०॥

वह निरन्तर सैकड़ों इन्द्रोंके समान भोग-विलास करता रहता है। यद्यपि [श्रीरामजी-सरीखा] अत्यन्त प्रबल शत्रु सिरपर है, फिर भी उसको न तो चिन्ता है और न डर ही है॥ १०॥

चौ०—इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥ १॥

यहाँ श्रीरघुवीर सुबेलपर्वतपर सेनाकी बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे। पर्वतका एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय, समतल और विशेषरूपसे उज्ज्वल शिखर देखकर—॥ १॥

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥ २॥

वहाँ लक्ष्मणजीने वृक्षोंके कोमल पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथोंसे सजाकर बिछा दिये। उसपर सुन्दर और कोमल मृगछाला बिछा दी। उसी आसनपर कृपालु श्रीरामजी विराजमान थे॥ २॥

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥ ३॥

प्रभु श्रीरामजी वानरराज सुग्रीवकी गोदमें अपना सिर रक्खे हैं। उनके बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस [रक्खा] है। वे अपने दोनों कर-कमलोंसे बाण सुधार रहे हैं, विभीषणजी कानोंसे लगकर सलाह कर रहे हैं॥ ३॥

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥ ४॥

परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान् अनेकों प्रकारसे प्रभुके चरणकमलोंको दबा रहे हैं। लक्ष्मणजी कमरमें तरकस कसे और हाथोंमें धनुष-बाण लिये वीरासनसे प्रभुके पीछे सुशोभित हैं॥ ४॥

दो०—एहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन॥ ११ (क)॥

इस प्रकार कृपा, रूप (सौन्दर्य) और गुणोंके धाम श्रीरामजी विराजमान हैं। वे मनुष्य धन्य हैं, जो सदा इस ध्यानमें लौ लगाये रहते हैं॥ ११ (क)॥

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥ ११ (ख)॥

पूर्व दिशाकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामजीने चन्द्रमाको उदय हुआ देखा। तब वे

सबसे कहने लगे—चन्द्रमाको तो देखो। कैसा सिंहके समान निडर है! ॥ ११ (ख)॥

चौ०—पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी॥ १॥

पूर्व दिशारूपी पर्वतकी गुफामें रहनेवाला, अत्यन्त प्रताप, तेज और बलकी राशि यह चन्द्रमारूपी सिंह अन्धकाररूपी मतवाले हाथीके मस्तकको विदीर्ण करके आकाशरूपी वनमें निर्भय विचर रहा है॥ १॥

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥ २॥

आकाशमें बिखरे हुए तारे मोतियोंके समान हैं, जो रात्रिरूपी सुन्दर स्त्रीके शृङ्गार हैं। प्रभुने कहा—भाइयो! चन्द्रमामें जो कालापन है, वह क्या है? अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार कहो॥ २॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥ ३॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये। चन्द्रमामें पृथ्वीकी छाया दिखायी दे रही है। किसीने कहा—चन्द्रमाको राहुने मारा था। वही [चोटका] काला दाग हृदयपर पड़ा हुआ है॥ ३॥

कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥ ४॥

कोई कहता है—जब ब्रह्माने [कामदेवकी स्त्री] रतिका मुख बनाया, तब उसने चन्द्रमाका सार भाग निकाल लिया [जिससे रतिका मुख तो परम सुन्दर बन गया, परंतु चन्द्रमाके हृदयमें छेद हो गया]। वही छेद चन्द्रमाके हृदयमें वर्तमान है, जिसकी राहसे आकाशकी काली छाया उसमें दिखायी पड़ती है॥ ४॥

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥ ५॥

प्रभु श्रीरामजीने कहा—विष चन्द्रमाका बहुत प्यारा भाई है। इसीसे उसने विषको अपने हृदयमें स्थान दे रक्खा है। विषयुक्त अपने किरणसमूहको फैलाकर वह वियोगी नर-नारियोंको जलाता रहता है॥ ५॥

दो०—कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥ १२(क)॥

हनुमान्‌जीने कहा—हे प्रभो! सुनिये, चन्द्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुन्दर श्याम मूर्ति चन्द्रमाके हृदयमें बसती है; वही श्यामताकी झलक चन्द्रमामें है॥ १२ (क)॥

नवाह्नपारायण, सातवाँ विश्राम

पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान ॥ १२ (ख)॥

पवनपुत्र हनुमान्‌जीके वचन सुनकर सुजान श्रीरामजी हँसे। फिर दक्षिणकी ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले—॥ १२ (ख)॥

चौ०—देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥ १॥

हे विभीषण! दक्षिण दिशाकी ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है और बिजली चमक रही है। भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के) स्वरसे गरज रहा है। कहीं कठोर ओलोंकी वर्षा न हो॥ १॥

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥ २॥

विभीषण बोले—हे कृपालु! सुनिये, यह न तो बिजली है, न बादलोंकी घटा। लङ्काकी चोटीपर एक महल है। दशग्रीव रावण वहाँ [नाच-गानका] अखाड़ा देख रहा है॥ २॥

छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥ ३॥

रावणने सिरपर मेघडंबर (बादलोंके डंबर-जैसा विशाल और काला) छत्र धारण कर रक्खा है। वही मानो बादलोंकी अत्यन्त काली घटा है। मन्दोदरीके कानोंमें जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो! वही मानो बिजली चमक रही है॥ ३॥

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥ ४॥

हे देवताओंके सम्राट्! सुनिये, अनुपम ताल और मृदंग बज रहे हैं। वही मधुर [गर्जन] ध्वनि है। रावणका अभिमान समझकर प्रभु मुसकराये। उन्होंने धनुष चढ़ाकर उसपर बाणका सन्धान किया॥ ४॥

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥ १३ (क)॥

और एक ही बाणसे [रावणके] छत्र-मुकुट और [मन्दोदरीके] कर्णफूल काट गिराये। सबके देखते-देखते वे जमीनपर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसीने नहीं जाना॥ १३ (क)॥

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥ १३ (ख)॥

ऐसा चमत्कार करके श्रीरामजीका बाण [वापस] आकर [फिर] तरकसमें जा घुसा।

यह महान् रस-भंग (रंगमें भंग) देखकर रावणकी सारी सभा भयभीत हो गयी ॥ १३ (ख) ॥

चौ०—कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा ॥
सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी ॥ १ ॥

न भूकम्प हुआ, न बहुत जोरकी हवा (आँधी) चली। न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रोंसे देखे। [फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल कैसे कटकर गिर पड़े ?] सभी अपने-अपने हृदयमें सोच रहे हैं कि यह बड़ा भयंकर अपशकुन हुआ ॥ १ ॥

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई ॥
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही ॥ २ ॥

सभाको भयभीत देखकर रावणने हँसकर युक्ति रचकर ये वचन कहे—सिरोंका गिरना भी जिसके लिये निरन्तर शुभ होता रहा है, उसके लिये मुकुटका गिरना अपशकुन कैसा ? ॥ २ ॥

सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ ॥ ३ ॥

अपने-अपने घर जाकर सो रहो [डरनेकी कोई बात नहीं है]। तब सब लोग सिर नवाकर घर गये। जबसे कर्णफूल पृथ्वीपर गिरा, तबसे मन्दोदरीके हृदयमें सोच बस गया ॥ ३ ॥

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू ॥ ४ ॥

नेत्रोंमें जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह [रावणसे] कहने लगी—हे प्राणनाथ ! मेरी विनती सुनिये। हे प्रियतम ! श्रीरामसे विरोध छोड़ दीजिये। उन्हें मनुष्य जानकर मनमें हठ न पकड़े रहिये ॥ ४ ॥

दो०—बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ॥ १४ ॥

मेरे इन वचनोंपर विश्वास कीजिये कि वे रघुकुलके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी विश्वरूप हैं—(यह सारा विश्व उन्हींका रूप है।) वेद जिनके अङ्ग-अङ्गमें लोकोंकी कल्पना करते हैं ॥ १४ ॥

चौ०—पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला ॥ १ ॥

पाताल [जिन विश्वरूप भगवान्का] चरण है, ब्रह्मलोक सिर है, अन्य (बीचके सब) लोकोंका विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अङ्गोंपर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि-संचालन (भौंहोंका चलना) है। सूर्य नेत्र है, बादलोंका समूह बाल है ॥ १ ॥

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी ॥ २ ॥

अश्विनीकुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं। दसों दिशाएँ कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है॥ २॥

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥ ३॥

लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत है। माया हँसी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है, वरुण जीभ है, उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है॥ ३॥

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥ ४॥

अठारह प्रकारकी असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं। नदियाँ नसोंका जाल हैं, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचेकी इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाय?॥ ४॥

दो०—अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥ १५ (क)॥

शिव जिनका अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चन्द्रमा मन हैं और महान् (विष्णु) ही चित्त हैं। उन्हीं चराचररूप भगवान् श्रीरामजीने मनुष्यरूपमें निवास किया है॥ १५ (क)॥

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥ १५ (ख)॥

हे प्राणपति! सुनिये, ऐसा विचारकर प्रभुसे वैर छोड़कर श्रीरघुवीरके चरणोंमें प्रेम कीजिये, जिससे मेरा सुहाग न जाय॥ १५ (ख)॥

चौ०—बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥ १॥

पत्नीके वचन कानोंसे सुनकर रावण खूब हँसा [और बोला—] अहो! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान् है। स्त्रीका स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदयमें आठ अवगुण सदा रहते हैं—॥ १॥

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥ २॥

साहस, झूठ, चञ्चलता, माया (छल), भय (डरपोकपन), अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रुका समग्र (विराट्) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया॥ २॥

सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा प्रसाद अब तोरें॥
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥ ३॥

हे प्रिये! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभावसे ही मेरे वशमें है। तेरी कृपासे मुझे यह अब समझ पड़ा। हे प्रिये! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुताका बखान कर रही है॥ ३॥

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि कालबस मतिभ्रम भयऊ॥ ४॥

हे मृगनयनी! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यभरी) हैं, समझनेपर सुख देनेवाली और सुननेसे भय छुड़ानेवाली हैं। मन्दोदरीने मनमें ऐसा निश्चय कर लिया कि पतिको कालवश मतिभ्रम हो गया है॥ ४॥

दो०—एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध॥ १६(क)॥

इस प्रकार [अज्ञानवश] बहुत-से विनोद करते हुए रावणको सवेरा हो गया। तब स्वभावसे ही निडर और घमंडमें अंधा लङ्कापति सभामें गया॥ १६ (क)॥

सो०—फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥ १६(ख)॥

यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं, तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्माके समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्खके हृदयमें चेत (ज्ञान) नहीं होता॥ १६ (ख)॥

चौ०—इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥ १॥

यहाँ (सुवेल पर्वतपर) प्रातःकाल श्रीरघुनाथजी जागे और उन्होंने सब मन्त्रियोंको बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइये, अब क्या उपाय करना चाहिये? जाम्बवान्‌ने श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाकर कहा—॥ १॥

सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी॥
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालिकुमारा॥ २॥

हे सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाले)! हे सबके हृदयमें बसनेवाले (अन्तर्यामी)! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणोंकी राशि! सुनिये। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगदको दूत बनाकर भेजा जाय॥ २॥

नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥ ३॥

यह अच्छी सलाह सबके मनमें जँच गयी। कृपाके निधान श्रीरामजीने अंगदसे

कहा—हे बल, बुद्धि और गुणोंके धाम वालिपुत्र ! हे तात ! तुम मेरे कामके लिये लङ्का जाओ ॥ ३ ॥

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ । परम चतुर मैं जानत अहऊँ ॥
काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥ ४ ॥

तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो । शत्रुसे वही बातचीत करना, जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो ॥ ४ ॥

सो०—प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ ।
सोइ गुन सागर ईस राम कृपा जा पर करहु ॥ १७ (क) ॥

प्रभुकी आज्ञा सिर चढ़ाकर और उनके चरणोंकी वन्दना करके अंगदजी उठे [और बोले—] हे भगवान् श्रीरामजी ! आप जिसपर कृपा करें, वही गुणोंका समुद्र हो जाता है ॥ १७ (क) ॥

स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ ।
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ ॥ १७ (ख) ॥

स्वामीके सब कार्य अपने-आप सिद्ध हैं, यह तो प्रभुने मुझको आदर दिया है [जो मुझे अपने कार्यपर भेज रहे हैं] । ऐसा विचारकर युवराज अंगदका हृदय हर्षित और शरीर पुलकित हो गया ॥ १७ (ख) ॥

चौ०—बंदि चरन उर धरि प्रभुताई । अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका । रन बाँकुरा बालिसुत बंका ॥ १ ॥

चरणोंकी वन्दना करके और भगवान्‌की प्रभुता हृदयमें धरकर अंगद सबको सिर नवाकर चले । प्रभुके प्रतापको हृदयमें धारण किये हुए रणबाँकुरे वीर बालिपुत्र स्वाभाविक ही निर्भय हैं ॥ १ ॥

पुर पैठत रावन कर बेटा । खेलत रहा सो होइ गै भेटा ॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई । जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥ २ ॥

लङ्कामें प्रवेश करते ही रावणके पुत्रसे भेंट हो गयी, जो वहाँ खेल रहा था । बातों-ही-बातोंमें दोनोंमें झगड़ा बढ़ गया [क्योंकि] दोनों ही अतुलनीय बलवान् थे और फिर दोनोंकी युवावस्था थी ॥ २ ॥

तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई । गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई ॥
निसिचर निकर देखि भट भारी । जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥ ३ ॥

उसने अंगदपर लात उठायी । अंगदने [वही] पैर पकड़कर उसे घुमाकर जमीनपर दे पटका (मार गिराया) । राक्षसके समूह भारी योद्धा देखकर जहाँ-तहाँ [भाग] चले; वे डरके मारे पुकार भी न मचा सके ॥ ३ ॥

एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी ॥ ४ ॥

एक दूसरेको मर्म (असली बात) नहीं बतलाते, उस (रावणके पुत्र) का वध समझकर सब चुप मारकर रह जाते हैं। [रावणपुत्रकी मृत्यु जानकर और राक्षसोंको भयके मारे भागते देखकर] नगरभरमें कोलाहल मच गया कि जिसने लङ्का जलायी थी, वही वानर फिर आ गया है ॥ ४ ॥

अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा ॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई ॥ ५ ॥

सब अत्यन्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा। वे बिना पूछे ही अंगदको [रावणके दरबारकी] राह बता देते हैं। जिसे ही वे देखते हैं, वही डरके मारे सूख जाता है ॥ ५ ॥

दो०—गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज ॥ १८ ॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंका स्मरण करके अंगद रावणकी सभाके द्वारपर गये। और वे धीर, वीर और बलकी राशि अंगद सिंहकी-सी ऐंड़ (शान) से इधर-उधर देखने लगे ॥ १८ ॥

चौ०—तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा ॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा ॥ १ ॥

तुरंत ही उन्होंने एक राक्षसको भेजा और रावणको अपने आनेका समाचार सूचित किया। सुनते ही रावण हँसकर बोला—बुला लाओ, [देखें] कहाँका बंदर है ॥ १ ॥

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए ॥
अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें ॥ २ ॥

आज्ञा पाकर बहुत-से दूत दौड़े और वानरोंमें हाथीके समान अंगदको बुला लाये। अंगदने रावणको ऐसे बैठे हुए देखा जैसे कोई प्राणयुक्त (सजीव) काजलका पहाड़ हो ! ॥ २ ॥

भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना ॥ ३ ॥

भुजाएँ वृक्षोंके और सिर पर्वतोंके शिखरोंके समान हैं। रोमावली मानो बहुत-सी लताएँ हैं। मुँह, नाक, नेत्र और कान—पर्वतकी कन्दराओं और खोहोंके बराबर हैं ॥ ३ ॥

गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा ॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी ॥ ४ ॥

अत्यन्त बलवान् बाँके वीर बालिपुत्र अंगद सभामें गये, वे मनमें जरा भी नहीं

झिझके। अंगदको देखते ही सब सभासद् उठ खड़े हुए। यह देखकर रावणके हृदयमें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४ ॥

दो०—जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ ॥ १९ ॥

जैसे मतवाले हाथियोंके झुंडमें सिंह [निःशंक होकर] चला जाता है, वैसे ही श्रीरामजीके प्रतापका हृदयमें स्मरण करके वे [निर्भय] सभामें सिर नवाकर बैठ गये ॥ १९ ॥

चौ०—कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर ॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई ॥ १ ॥

रावणने कहा—अरे बंदर! तू कौन है? [अंगदने कहा—] हे दशग्रीव! मैं श्रीरघुवीरका दूत हूँ। मेरे पितासे और तुमसे मित्रता थी। इसलिये हे भाई! मैं तुम्हारी भलाईके लिये ही आया हूँ ॥ १ ॥

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा ॥ २ ॥

तुम्हारा उत्तम कुल है, पुलस्त्य ऋषिके तुम पौत्र हो। शिवजीकी और ब्रह्माजीकी [तु]मने बहुत प्रकारसे पूजा की है। उनसे वर पाये हैं और सब काम सिद्ध किये हैं। [लो]कपालों और सब राजाओंको तुमने जीत लिया है ॥ २ ॥

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥ ३ ॥

राजमदसे या मोहवश तुम जगज्जननी सीताजीको हर लाये हो। अब, तुम मेरे शुभ वचन (मेरी हितभरी सलाह) सुनो। (उसके अनुसार चलनेसे) प्रभु श्रीरामजी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे ॥ ३ ॥

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें ॥ ४ ॥

दाँतोंमें तिनका दबाओ, गलेमें कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियोंसहित अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर आदरपूर्वक जानकीजीको आगे करके, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो— ॥ ४ ॥

दो०—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि ॥ २० ॥

और 'हे शरणागतके पालन करनेवाले रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजी! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' [इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो।] आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे ॥ २० ॥

चौ०—रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नातें मानिऐ मिताई॥ १॥

[रावणने कहा—] अरे बंदरके बच्चे! सँभालकर बोल! मूर्ख! मुझ देवताओंके शत्रुको तूने जाना नहीं? अरे भाई! अपना और अपने बापका नाम तो बता। किस नातेसे मित्रता मानता है? ॥ १॥

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥ २॥

[अंगदने कहा—] मेरा नाम अंगद है, मैं बालिका पुत्र हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी? अंगदका वचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया [और बोला—] हाँ, मैं जान गया (मुझे याद आ गया), बालि नामका एक बंदर था॥ २॥

अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥
गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥ ३॥

अरे अंगद! तू ही बालिका लड़का है? अरे कुलनाशक! तू तो अपने कुलरूपी बाँसके लिये अग्निरूप ही पैदा हुआ! गर्भमें ही क्यों न नष्ट हो गया? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ, जो अपने ही मुँहसे तपस्वियोंका दूत कहलाया! ॥ ३॥

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥ ४॥

अब बालिकी कुशल तो बता, वह [आजकल] कहाँ है? तब अंगदने हँसकर कहा—दस (कुछ) दिन बीतनेपर [स्वयं ही] बालिके पास जाकर, अपने मित्रको हृदयसे लगाकर, उसीसे कुशल पूछ लेना॥ ४॥

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥ ५॥

श्रीरामजीसे विरोध करनेपर जैसी कुशल होती है, वह सब तुमको वे सुनावेंगे। हे मूर्ख! सुन, भेद उसीके मनमें पड़ सकता है, (भेदनीति उसीपर अपना प्रभाव डाल सकती है) जिसके हृदयमें श्रीरघुवीर न हों॥ ५॥

दो०—हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥ २१॥

सच है, मैं तो कुलका नाश करनेवाला हूँ और हे रावण! तुम कुलके रक्षक हो! अंधे-बहरे भी ऐसी बात नहीं कहते, तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं! ॥२१॥

चौ०—सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा॥ १॥

शिव, ब्रह्मा [आदि] देवता और मुनियोंके समुदाय जिनके चरणोंकी सेवा [करना] चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुलको डुबा दिया ? अरे ! ऐसी बुद्धि होनेपर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता ? ॥ १ ॥

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥ २ ॥

वानर (अंगद) की कठोर वाणी सुनकर रावण आँखें तरेरकर (तिरछी करके) बोला—अरे दुष्ट ! मैं तेरे सब कठोर वचन इसीलिये सह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्मको जानता हूँ (उन्हींकी रक्षा कर रहा हूँ) ॥ २ ॥

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी॥ ३ ॥

अंगदने कहा—तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है। [वह यह कि] तुमने परायी स्त्रीकी चोरी की है और दूतकी रक्षाकी बात तो अपनी आँखोंसे देख ली। ऐसे धर्मके व्रतको धारण (पालन) करनेवाले तुम डूबकर मर नहीं जाते ! ॥ ३ ॥

कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी॥ ४ ॥

नाक-कानसे रहित बहिनको देखकर तुमने धर्म विचारकर ही तो क्षमा कर दिया था ! तुम्हारी धर्मशीलता जग-जाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान् हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया ॥ ४ ॥

दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥२२(क)॥

[रावणने कहा—] अरे जड जन्तु वानर ! व्यर्थ बक-बक न कर; अरे मूर्ख ! मेरी भुजाएँ तो देख। ये सब लोकपालोंके विशाल बलरूपी चन्द्रमाको ग्रसनेके लिये राहु हैं ॥ २२ (क) ॥

पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास॥२२(ख)॥

फिर [तूने सुना ही होगा कि] आकाशरूपी तालाबमें मेरी भुजाओंरूपी कमलोंपर बसकर शिवजीसहित कैलास हंसके समान शोभाको प्राप्त हुआ था ! ॥ २२ (ख) ॥

चौ०—तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥ १ ॥

अरे अंगद ! सुन, तेरी सेनामें बता ऐसा कौन योद्धा है, जो मुझसे भिड़ सकेगा ?

तेरा मालिक तो स्त्रीके वियोगमें बलहीन हो रहा है और उसका छोटा भाई उसके दुःखसे दुखी और उदास है ॥ १ ॥

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥ २ ॥

तुम और सुग्रीव, दोनों [नदी] तटके वृक्ष हो। [रहा] मेरा छोटा भाई विभीषण, [सो] वह भी बड़ा डरपोक है। मन्त्री जाम्बवान् बहुत बूढ़ा है। वह अब लड़ाईमें क्या चढ़ (उद्यत हो) सकता है ? ॥ २ ॥

सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह बालिकुमारा॥ ३ ॥

नल-नील तो शिल्प-कर्म जानते हैं (वे लड़ना क्या जानें) ! हाँ, एक वानर जरूर महान् बलवान् है, जो पहले आया था और जिसने लङ्का जलायी थी। यह वचन सुनते ही वालिपुत्र अंगदने कहा— ॥ ३ ॥

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा॥
रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥ ४ ॥

हे राक्षसराज ! सच्ची बात कहो; क्या उस वानरने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया ? रावण [जैसे जगद्विजयी योद्धा] का नगर एक छोटे-से वानरने जला दिया। ऐसे वचन सुनकर उन्हें सत्य कौन कहेगा ? ॥ ४ ॥

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥ ५ ॥

हे रावण ! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीवका एक छोटा-सा दौड़कर चलनेवाला हरकारा है। वह बहुत चलता है, वीर नहीं है। उसको तो हमने [केवल] खबर लेनेके लिये भेजा था ॥ ५ ॥

दो०—सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ॥ २३(क)॥

क्या सचमुच ही उस वानरने प्रभुकी आज्ञा पाये बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला ? मालूम होता है, इसी डरसे वह लौटकर सुग्रीवके पास नहीं गया और कहीं छिप रहा ! ॥ २३ (क) ॥

सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह॥ २३(ख)॥

हे रावण ! तुम सब सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है। सचमुच हमारी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुमसे लड़नेमें शोभा पाये ॥ २३ (ख) ॥

प्रीति विरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति वध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥ २३ (ग) ॥

प्रीति और वैर बराबरीवालेसे ही करना चाहिये, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेढकोंको मारे तो क्या उसे कोई भला कहेगा ? ॥ २३ ॥ (ग) ॥

जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष ॥ २३ (घ) ॥

यद्यपि तुम्हें मारनेमें श्रीरामजीकी लघुता है और बड़ा दोष भी है तथापि हे रावण ! सुनो, क्षत्रिय जातिका क्रोध बड़ा कठिन होता है ॥ २३ (घ) ॥

बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस ॥ २३ (ङ) ॥

वक्रोक्तिरूपी धनुषसे वचनरूपी बाण मारकर अंगदने शत्रुका हृदय जला दिया। वीर रावण उन बाणोंको मानो प्रत्युत्तररूपी सँड़सियोंसे निकाल रहा है ॥ २३ (ङ) ॥

हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ॥ २३ (च) ॥

तब रावण हँसकर बोला—बंदरमें यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायोंसे भला करनेकी चेष्टा करता है ॥ २३ (च) ॥

चौ०—धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई ॥ १ ॥

बंदरको धन्य है, जो अपने मालिकके लिये लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है। नाच-कूदकर लोगोंको रिझाकर, मालिकका हित करता है। यह उसके धर्मकी निपुणता है ॥ १ ॥

अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती ॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहिं काना ॥ २ ॥

हे अंगद ! तेरी जाति स्वामिभक्त है [फिर भला] तू अपने मालिकके गुण इस प्रकार कैसे न बखानेगा ? मैं गुणग्राहक (गुणोंका आदर करनेवाला) और परम सुजान (समझदार) हूँ, इसीसे तेरी जली-कटी बक-बकपर कान (ध्यान) नहीं देता ॥ २ ॥

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा ॥ ३ ॥

अंगदने कहा—तुम्हारी सच्ची गुणग्राहकता तो मुझे हनुमान्‌ने सुनायी थी। उसने अशोकवनको विध्वंस (तहस-नहस) करके तुम्हारे पुत्रको मारकर नगरको जला दिया था। तो भी [तुमने अपनी गुणग्राहकताके कारण यही समझा कि] उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया ॥ ३ ॥

सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरें लाज न रोष न माखा॥ ४॥

तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव विचारकर, हे दशग्रीव! मैंने कुछ धृष्टता की है। हनुमान्‌ने जो कुछ कहा था, उसे आकर मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें न लज्जा है, न क्रोध है और न चिढ़ है॥ ४॥

जौं असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥ ५॥

[रावण बोला—] अरे वानर! जब तेरी ऐसी बुद्धि है तभी तो तू बापको खा गया। ऐसा वचन कहकर रावण हँसा। अंगदने कहा—पिताको खाकर फिर तुमको भी खा डालता। परंतु अभी तुरंत कुछ और ही बात मेरी समझमें आ गयी!॥ ५॥

बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥ ६॥

अरे नीच अभिमानी! बालिके निर्मल यशका पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता। रावण! यह तो बता कि जगत्‌में कितने रावण हैं? मैंने जितने रावण अपने कानोंसे सुन रक्खे हैं, उन्हें सुन—॥ ६॥

बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥ ७॥

एक रावण तो बलिको जीतने पातालमें गया था, तब बच्चोंने उसे घुड़सालमें बाँध रक्खा। बालक खेलते थे और जा-जाकर उसे मारते थे। बलिको दया लगी, तब उन्होंने उसे छुड़ा दिया॥ ७॥

एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥ ८॥

फिर एक रावणको सहस्रबाहुने देखा और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकारके (विचित्र) जन्तुकी तरह [समझकर] पकड़ लिया। तमाशेके लिये वह उसे घर ले आया। तब पुलस्त्य मुनिने जाकर उसे छुड़ाया॥ ८॥

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥ २४॥

एक रावणकी बात कहनेमें तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है—वह [बहुत दिनोंतक] बालिकी काँखमें रहा था। इनमेंसे तुम कौन-से रावण हो? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ॥ २४॥

चौ०—सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥ १॥

[रावणने कहा—] अरे मूर्ख ! सुन, मैं वही बलवान् रावण हूँ, जिसकी भुजाओंकी लीला (करामात) कैलास पर्वत जानता है। जिसकी शूरता उमापति महादेवजी जानते हैं, जिन्हें अपने सिररूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर मैंने पूजा था ॥ १ ॥

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्ह कें उर साला॥ २॥

सिररूपी कमलोंको अपने हाथोंसे उतार-उतारकर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिवजीकी पूजा की है। अरे मूर्ख ! मेरी भुजाओंका पराक्रम दिक्पाल जानते हैं, जिनके हृदयमें वह आज भी चुभ रहा है ॥ २ ॥

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरिआई॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥ ३॥

दिग्गज (दिशाओंके हाथी) मेरी छातीकी कठोरताको जानते हैं। जिनके भयानक दाँत, जब-जब जाकर मैं उनसे जबरदस्ती भिड़ा, मेरी छातीमें कभी नहीं फूटे (अपना चिह्न भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छातीसे लगते ही वे मूलीकी तरह टूट गये ॥ ३ ॥

जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी॥ ४॥

जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है, जैसे मतवाले हाथीके चढ़ते समय छोटी नाव। मैं वही जगत्प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ। अरे झूठी बकवाद करनेवाले ! क्या तूने मुझको कानोंसे कभी नहीं सुना ? ॥ ४ ॥

दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥ २५॥

उस (महान् प्रतापी और जगत्प्रसिद्ध) रावणको (मुझे) तू छोटा कहता है और मनुष्यकी बड़ाई करता है ? अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बंदर ! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया ॥ २५ ॥

चौ०—सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥ १॥

रावणके ये वचन सुनकर अंगद क्रोधसहित वचन बोले—अरे नीच अभिमानी ! सँभालकर (सोच-समझकर) बोल। जिनका फरसा सहस्रबाहुकी भुजाओंरूपी अपार वनको जलानेके लिये अग्निके समान था, ॥ १ ॥

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥ २॥

जिनके फरसारूपी समुद्रकी तीव्र धारामें अनगिनत राजा अनेकों बार डूब गये, उन परशुरामजीका गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, अरे अभागे दशशीश ! वे मनुष्य क्योंकर हैं ? ॥ २ ॥

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥ ३॥

क्यों रे मूर्ख उद्दण्ड! श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य हैं? कामदेव भी क्या धनुर्धारी है? और गङ्गाजी क्या नदी हैं? कामधेनु क्या पशु है? और कल्पवृक्ष क्या पेड़ है? अन्न भी क्या दान है? और अमृत क्या रस है? ॥ ३॥

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥ ४॥

गरुड़जी क्या पक्षी हैं? शेषजी क्या सर्प हैं? अरे रावण! चिन्तामणि भी क्या पत्थर है? अरे ओ मूर्ख! सुन, वैकुण्ठ भी क्या लोक है? और श्रीरघुनाथजीकी अखण्ड भक्ति क्या [और लाभों-जैसा ही] लाभ है? ॥ ४॥

दो०—सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥ २६॥

सेनासमेत तेरा मान मथकर, अशोकवनको उजाड़कर, नगरको जलाकर और तेरे पुत्रको मारकर जो लौट गये [तू उनका कुछ भी न बिगाड़ सका], क्यों रे दुष्ट! वे हनुमान्‌जी क्या वानर हैं? ॥ २६॥

चौ०—सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥ १॥

अरे रावण! चतुराई (कपट) छोड़कर सुन। कृपाके समुद्र श्रीरघुनाथजीका तू भजन क्यों नहीं करता? अरे दुष्ट! यदि तू श्रीरामजीका वैरी हुआ तो तुझे ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं बचा सकेंगे॥ १॥

मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि राम सर लागें॥ २॥

हे मूढ़! व्यर्थ गाल न मार (डींग न हाँक)। श्रीरामजीसे वैर करनेपर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर-समूह श्रीरामजीके बाण लगते ही वानरोंके आगे पृथ्वीपर पड़ेंगे॥ २॥

ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥ ३॥

और रीछ-वानर तेरे उन गेंदके समान अनेकों सिरोंसे चौगान खेलेंगे। जब श्रीरघुनाथजी युद्धमें कोप करेंगे और उनके अत्यन्त तीक्ष्ण बहुत-से बाण छूटेंगे, ॥ ३॥

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा॥
सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥ ४॥

तब क्या तेरा ऐसा गाल चलेगा? ऐसा विचारकर उदार (कृपालु) श्रीरामजीको

भज। अंगदके ये वचन सुनकर रावण बहुत अधिक जल उठा। मानो जलती हुई प्रचण्ड अग्निमें घी पड़ गया हो ॥ ४ ॥

दो०—कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि ॥ २७ ॥

[वह बोला—अरे मूर्ख !] कुम्भकर्ण ऐसा मेरा भाई है, इन्द्रका शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है ! और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नहीं कि मैंने सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत्‌को जीत लिया है ! ॥ २७ ॥

चौ०—सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा ॥ १ ॥

रे दुष्ट ! वानरोंकी सहायता जोड़कर रामने समुद्र बाँध लिया; बस, यही उसकी प्रभुता है। समुद्रको तो अनेकों पक्षी भी लाँघ जाते हैं। पर इसीसे वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते। अरे मूर्ख बंदर ! सुन—॥ १ ॥

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा ॥ २ ॥

मेरी एक-एक भुजारूपी समुद्र बलरूपी जलसे पूर्ण है, जिसमें बहुत-से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चुके हैं। [बता,] कौन ऐसा शूरवीर है जो मेरे इन अथाह और अपार बीस समुद्रोंका पार पा जायगा ? ॥ २ ॥

दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा ॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा ॥ ३ ॥

अरे दुष्ट ! मैंने दिक्पालोंतकसे जल भरवाया और तू एक राजाका मुझे सुयश सुनाता है। यदि तेरा मालिक, जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कह रहा है, संग्राममें लड़नेवाला योद्धा है—॥ ३ ॥

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥ ४ ॥

तो [फिर] वह दूत किसलिये भेजता है ? शत्रुसे प्रीति (सन्धि) करते उसे लाज नहीं आती ? [पहले] कैलासका मथन करनेवाली मेरी भुजाओंको देख। फिर अरे मूर्ख वानर ! अपने मालिककी सराहना करना ॥ ४ ॥

दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ॥ २८ ॥

रावणके समान शूरवीर कौन है ? जिसने अपने ही हाथोंसे सिर काट-काटकर अत्यन्त हर्षके साथ बहुत बार उन्हें अग्निमें होम दिया। स्वयं गौरीपति शिवजी इस बातके साक्षी हैं ॥ २८ ॥

चौ०—जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर कें कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥ १॥

मस्तकोंके जलते समय जब मैंने अपने ललाटोंपर लिखे हुए विधाताके अक्षर देखे, तब मनुष्यके हाथसे अपनी मृत्यु होना बाँचकर, विधाताकी वाणी (लेखको) असत्य जानकर मैं हँसा॥ १॥

सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगें। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥ २॥

उस बातको समझकर (स्मरण करके) भी मेरे मनमें डर नहीं है। [क्योंकि मैं समझता हूँ कि] बूढ़े ब्रह्माने बुद्धिभ्रमसे ऐसा लिख दिया है। अरे मूर्ख! तू लज्जा और मर्यादा छोड़कर मेरे आगे बार-बार दूसरे वीरका बल कहता है!॥ २॥

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥ ३॥

अंगदने कहा—अरे रावण! तेरे समान लज्जावान् जगत्‌में कोई नहीं है। लज्जा-शीलता तो तेरा सहज स्वभाव ही है। तू अपने मुँहसे अपने गुण कभी नहीं कहता॥ ३॥

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कही॥
सो भुज बल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥ ४॥

सिर काटने और कैलास उठानेकी कथा चित्तमें चढ़ी हुई थी, इससे तूने उसे बीसों बार कहा। भुजाओंके उस बलको तो तूने हृदयमें ही टाल (छिपा) रक्खा है, जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालिको जीता था॥ ४॥

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा॥
इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥ ५॥

अरे मन्दबुद्धि! सुन, अब बस कर। सिर काटनेसे भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है? इन्द्रजाल रचनेवालेको वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है॥ ५॥

दो०—जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद॥ २९॥

अरे मन्दबुद्धि! समझकर देख, पतंगे मोहवश आगमें जल मरते हैं, गदहोंके झुंड बोझ लादकर चलते हैं, पर इस कारण वे शूरवीर नहीं कहलाते॥ २९॥

चौ०—अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ॥ १॥

अरे दुष्ट! अब बतबढ़ाव मत कर; मेरा वचन सुन और अभिमान त्याग दे।

हे दशमुख! मैं दूतकी तरह [सन्धि करने] नहीं आया हूँ। श्रीरघुवीरने ऐसा विचारकर मुझे भेजा है—॥ १ ॥

बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृकाला॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥ २ ॥

कृपालु श्रीरामजी बार-बार ऐसा कहते हैं कि स्यारके मारनेसे सिंहको यश नहीं मिलता। अरे मूर्ख! प्रभुके [उन] वचनोंको मनमें समझकर (याद करके) ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं॥ २ ॥

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि परनारी॥ ३ ॥

नहीं तो तेरे मुँह तोड़कर मैं सीताजीको जबरदस्ती ले जाता। अरे अधम! देवताओंके शत्रु! तेरा बल तो मैंने तभी जान लिया, जब तू सूनेमें परायी स्त्रीको हर (चुरा) लाया॥ ३॥

तैं निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥ ४ ॥

तू राक्षसोंका राजा और बड़ा अभिमानी है, परंतु मैं तो श्रीरघुनाथजीके सेवक (सुग्रीव) का दूत (सेवकका भी सेवक) हूँ। यदि मैं श्रीरामजीके अपमानसे न डरूँ तो तेरे देखते-देखते ऐसा तमाशा करूँ कि—॥ ४ ॥

दो०—तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥ ३० ॥

तुझे जमीनपर पटककर, तेरी सेनाका संहार कर और तेरे गाँवको चौपट [नष्ट-भ्रष्ट] करके अरे मूर्ख! तेरी युवती स्त्रियोंसहित जानकीजीको ले जाऊँ॥ ३० ॥

चौ०—जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥ १ ॥

यदि ऐसा करूँ, तो भी इसमें कोई बड़ाई नहीं है। मरे हुएको मारनेमें कुछ भी पुरुषत्व (बहादुरी) नहीं है। वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा, ॥ १ ॥

सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥ २ ॥

नित्यका रोगी, निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला, भगवान् विष्णुसे विमुख, वेद और संतोंका विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करनेवाला, परायी निन्दा करनेवाला और पापकी खान (महान् पापी)—ये चौदह प्राणी जीते ही मुरदेके समान हैं॥ २ ॥

अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥ ३ ॥

अरे दुष्ट! ऐसा विचारकर मैं तुझे नहीं मारता। अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर (मुझे गुस्सा न दिला)। अंगदके वचन सुनकर राक्षसराज रावण दाँतोंसे होठ काटकर, क्रोधित होकर हाथ मलता हुआ बोला—॥ ३ ॥

रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥ ४ ॥

अरे नीच बंदर! अब तू मरना ही चाहता है। इसीसे छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। अरे मूर्ख बंदर! तू जिसके बलपर कड़ुए वचन बक रहा है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है॥ ४ ॥

दो०—अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥ ३१ (क)॥

उसे गुणहीन और मानहीन समझकर ही तो पिताने वनवास दे दिया। उसे एक तो वह (उसका) दुःख, उसपर युवती स्त्रीका विरह और फिर रात-दिन मेरा डर बना रहता है॥ ३१ (क)॥

जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक॥ ३१ (ख)॥

जिनके बलका तुझे गर्व है, ऐसे अनेकों मनुष्योंको तो राक्षस रात-दिन खाया करते हैं। अरे मूढ़! जिद्द छोड़कर समझ (विचार कर)॥ ३१ (ख)॥

चौ०—जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥ १ ॥

जब उसने श्रीरामजीकी निन्दा की, तब तो कपिश्रेष्ठ अंगद अत्यन्त क्रोधित हुए। क्योंकि [शास्त्र ऐसा कहते हैं कि] जो अपने कानोंसे भगवान् विष्णु और शिवकी निन्दा सुनता है, उसे गोवधके समान पाप होता है॥ १ ॥

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥ २ ॥

वानरश्रेष्ठ अंगद बहुत जोरसे कटकटाये (शब्द किया) और उन्होंने तमककर (जोरसे) अपने दोनों भुजदण्डोंको पृथ्वीपर दे मारा। पृथ्वी हिलने लगी, [जिससे बैठे हुए] सभासद् गिर पड़े और भयरूपी पवन (भूत) से ग्रस्त होकर भाग चले॥ २ ॥

गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पवारे॥ ३ ॥

रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा। उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरोंपर सुधारकर रख लिया और कुछ अंगदने उठाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पास फेंक दिये॥ ३ ॥

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥
की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥ ४॥

मुकुटोंको आते देखकर वानर भागे। [सोचने लगे] विधाता! क्या दिनमें ही उल्कापात होने लगा (तारे टूटकर गिरने लगे)? अथवा क्या रावणने क्रोध करके चार वज्र चलाये हैं, जो बड़े धायेके साथ (वेगसे) आ रहे हैं?॥ ४॥

कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥ ५॥

प्रभुने [उनसे] हँसकर कहा—मनमें डरो नहीं। ये न उल्का हैं, न वज्र हैं और न केतु या राहु ही हैं। अरे भाई! ये तो रावणके मुकुट हैं, जो बालिपुत्र अंगदके फेंके हुए आ रहे हैं॥ ५॥

दो०—तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥ ३२(क)॥

पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीने उछलकर उनको हाथसे पकड़ लिया और लाकर प्रभुके पास रख दिया। रीछ और वानर तमाशा देखने लगे। उनका प्रकाश सूर्यके समान था॥ ३२ (क)॥

उहाँ सकोपि दसानन सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ॥ ३२(ख)॥

वहाँ (सभामें) क्रोधयुक्त रावण सबसे क्रोधित होकर कहने लगा कि बंदरको पकड़ लो और पकड़कर मार डालो। अंगद यह सुनकर मुसकराने लगे॥ ३२ (ख)॥

चौ०—एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु॥
मर्कटहीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस द्वौ भाई॥ १॥

[रावण फिर बोला—] इसे मारकर सब योद्धा तुरंत दौड़ो और जहाँ-कहीं रीछ-वानरोंको पाओ, वहीं खा डालो। पृथ्वीको बंदरोंसे रहित कर दो और जाकर दोनों तपस्वी भाइयों (राम-लक्ष्मण) को जीते-जी पकड़ लो॥ १॥

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती॥ २॥

[रावणके ये कोपभरे वचन सुनकर] तब युवराज अंगद क्रोधित होकर बोले—तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती? अरे निर्लज्ज! अरे कुलनाशक! गला काटकर (आत्महत्या करके) मर जा! मेरा बल देखकर भी क्या तेरी छाती नहीं फटती?॥ २॥

रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंदमति कामी॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा॥ ३॥

अरे स्त्रीके चोर! अरे कुमार्गपर चलनेवाले! अरे दुष्ट, पापकी राशि, मन्दबुद्धि और कामी! तू सन्निपातमें क्या दुर्वचन बक रहा है? अरे दुष्ट राक्षस! तू कालके वश हो गया है? ॥ ३ ॥

याको फलु पावहिगो आगें। बानर भालु चपेटन्हि लागें ॥
रामु मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी ॥ ४ ॥

इसका फल तू आगे वानर और भालुओंके चपेटे लगनेपर पावेगा। राम मनुष्य हैं, ऐसा वचन बोलते ही, अरे अभिमानी! तेरी जीभें नहीं गिर पड़तीं? ॥ ४ ॥

गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं ॥ ५ ॥

इसमें संदेह नहीं है कि तेरी जीभें [अकेले नहीं वरं] सिरोंके साथ रणभूमिमें गिरेंगी ॥ ५ ॥

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर।
बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥ ३३(क)॥

रे दशकन्ध! जिसने एक ही बाणसे बालिको मार डाला, वह मनुष्य कैसे है? अरे कुजाति, अरे जड! बीस आँखें होनेपर भी तू अंधा है! तेरे जन्मको धिक्कार है॥ ३३(क)॥

तव सोनित कीं प्यास तृपित राम सायक निकर।
तजउँ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम ॥ ३३(ख)॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाणसमूह तेरे रक्तकी प्याससे प्यासे हैं। [वे प्यासे ही रह जायँगे] इस डरसे, अरे कड़वी बकवाद करनेवाले नीच राक्षस! मैं तुझे छोड़ता हूँ ॥ ३३ (ख)॥

चौ०—मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ॥ १ ॥

मैं तेरे दाँत तोड़नेमें समर्थ हूँ; पर क्या करूँ? श्रीरघुनाथजीने मुझे आज्ञा नहीं दी। ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और [तेरी] लङ्काको पकड़कर समुद्रमें डुबा दूँ ॥ १ ॥

गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका ॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥ २ ॥

तेरी लङ्का गूलरके फलके समान है। तुम सब कीड़े उसके भीतर [अज्ञानवश] निडर होकर बस रहे हो। मैं बंदर हूँ, मुझे इस फलको खाते क्या देर थी? पर उदार (कृपालु) श्रीरामचन्द्रजीने वैसी आज्ञा नहीं दी ॥ २ ॥

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई ॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा ॥ ३ ॥

अंगदकी युक्ति सुनकर रावण मुसकराया [और बोला—] अरे मूर्ख! बहुत

झूठ बोलना तूने कहाँ सीखा? वालिने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा। जान पड़ता है तू तपस्वियोंसे मिलकर लबार हो गया है ॥ ३ ॥

साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा ॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा ॥ ४ ॥

[अंगदने कहा—] अरे बीस भुजावाले! यदि तेरी दसों जीभें मैंने नहीं उखाड़ लीं तो सचमुच मैं लबार ही हूँ। श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापको समझकर (स्मरण करके) अंगद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावणकी सभामें प्रण करके (दृढ़ताके साथ) पैर रोप दिया ॥ ४ ॥

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी ॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥ ५ ॥

[और कहा—] अरे मूर्ख! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्रीरामजी लौट जायँगे, मैं सीताजीको हार गया। रावणने कहा—हे सब वीरो! सुनो, पैर पकड़कर बंदरको पृथ्वीपर पछाड़ दो ॥ ५ ॥

इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई ॥ ६ ॥

इन्द्रजीत (मेघनाद) आदि अनेकों बलवान् योद्धा जहाँ-तहाँसे हर्षित होकर उठे। वे पूरे बलसे बहुत-से उपाय करके झपटते हैं। पर पैर टलता नहीं, तब सिर नीचा करके फिर अपने-अपने स्थानपर जा बैठ जाते हैं ॥ ६ ॥

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ॥ ७ ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] वे देवताओंके शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं। परंतु हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! अंगदका चरण उनसे वैसे ही नहीं टलता जैसे कुयोगी (विषयी) पुरुष मोहरूपी वृक्षको नहीं उखाड़ सकते ॥ ७ ॥

दो०—कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ ॥ ३४(क) ॥

करोड़ों वीर योद्धा, जो बलमें मेघनादके समान थे, हर्षित होकर उठे। वे बार-बार झपटते हैं, पर वानरका चरण नहीं उठता, तब लज्जाके मारे सिर नवाकर बैठ जाते हैं ॥ ३४ (क) ॥

भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥ ३४(ख) ॥

जैसे करोड़ों विघ्न आनेपर भी संतका मन नीतिको नहीं छोड़ता, वैसे ही वानर (अंगद)का

चरण पृथ्वीको नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया! ॥ ३४(ख) ॥

चौ०—कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे ॥
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा ॥ १ ॥

अंगदका बल देखकर सब हृदयमें हार गये। तब अंगदके ललकारनेपर रावण स्वयं उठा। जब वह अंगदका चरण पकड़ने लगा तब बालिकुमार अंगदने कहा—मेरा चरण पकड़नेसे तेरा बचाव नहीं होगा! ॥ १ ॥

गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ॥ २ ॥

अरे मूर्ख! तू जाकर श्रीरामजीके चरण क्यों नहीं पकड़ता? यह सुनकर वह मनमें बहुत ही सकुचाकर लौट गया। उसकी सारी श्री जाती रही। वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्नमें चन्द्रमा दिखायी देता है ॥ २ ॥

सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई ॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा ॥ ३ ॥

वह सिर नीचा करके सिंहासनपर जा बैठा। मानो सारी सम्पत्ति गँवाकर बैठा हो। श्रीरामचन्द्रजी जगत्‌भरके आत्मा और प्राणोंके स्वामी हैं। उनसे विमुख रहनेवाला शान्ति कैसे पा सकता है? ॥ ३ ॥

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! जिन श्रीरामचन्द्रजीके भ्रूविलास (भौंहके इशारे) से विश्व उत्पन्न होता है और फिर नाशको प्राप्त होता है, जो तृणको वज्र और वज्रको तृण बना देते हैं (अत्यन्त निर्बलको महान् प्रबल और महान् प्रबलको अत्यन्त निर्बल कर देते हैं), उनके दूतका प्रण, कहो कैसे टल सकता है? ॥ ४ ॥

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना ॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो ॥ ५ ॥

फिर अंगदने अनेकों प्रकारसे नीति कही। पर रावणने नहीं माना, क्योंकि उसका काल निकट आ गया था। शत्रुके गर्वको चूर करके अंगदने उसको प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका सुयश सुनाया और फिर वह राजा बालिका पुत्र यह कहकर चल दिया—॥ ५ ॥

हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई ॥
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा ॥ ६ ॥

रणभूमिमें तुझे खेला-खेलाकर न मारूँ तबतक अभी [पहलेसे] क्या बड़ाई करूँ। अंगदने पहले ही (सभामें आनेसे पूर्व ही) उसके पुत्रको मार डाला था। वह संवाद सुनकर रावण दुखी हो गया ॥ ६ ॥

जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भए बिसेषी ॥ ७ ॥

अंगदका प्रण [सफल] देखकर सब राक्षस भयसे अत्यन्त ही व्याकुल हो गये ॥७॥

दो०—रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज ॥ ३५(क) ॥

शत्रुके बलका मर्दन कर, बलकी राशि बालिपुत्र अंगदजीने हर्षित होकर आकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमल पकड़ लिये। उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंमें [आनन्दाश्रुओंका] जल भरा है ॥ ३५ (क) ॥

साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरीं रावनहि बहुरि कहा समुझाइ ॥ ३५(ख) ॥

संध्या हो गयी जानकर दशग्रीव बिलखता हुआ (उदास होकर) महलमें गया। मन्दोदरीने रावणको समझाकर फिर कहा—॥ ३५ (ख) ॥

चौ०—कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही ॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई ॥ १ ॥

हे कान्त! मनमें समझकर (विचारकर) कुबुद्धिको छोड़ दो। आपसे और श्रीरघुनाथजीसे युद्ध शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाईने एक जरा-सी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं लाँघ सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है ॥ १ ॥

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा ॥
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका ॥ २ ॥

हे प्रियतम! आप उन्हें संग्राममें जीत पायेंगे, जिनके दूतका ऐसा काम है! खेलसे ही समुद्र लाँघकर वह वानरोंमें सिंह (हनुमान्) आपकी लङ्कामें निर्भय चला आया ॥२॥

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा ॥
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा ॥ ३ ॥

रखवालोंको मारकर उसने अशोकवन उजाड़ डाला। आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमारको मार डाला और सम्पूर्ण नगरको जलाकर राख कर दिया। उस समय आपके बलका गर्व कहाँ चला गया था? ॥ ३ ॥

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु ॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु ॥ ४ ॥

अब हे स्वामी! झूठ (व्यर्थ) गाल न मारिये (डींग न हाँकिये)। मेरे कहनेपर हृदयमें कुछ विचार कीजिये। हे पति! आप श्रीरघुपतिको [निरा] राजा मत समझिये, बल्कि अग-जगनाथ (चराचरके स्वामी) और अतुलनीय बलवान् जानिये ॥ ४ ॥

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा ॥
जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला ॥ ५ ॥

श्रीरामजीके बाणका प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था। परंतु आपने उसका कहना भी नहीं माना। जनककी सभामें अगणित राजागण थे। वहाँ विशाल और अतुलनीय बलवाले आप भी थे ॥ ५ ॥

भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥ ६ ॥

वहाँ शिवजीका धनुष तोड़कर श्रीरामजीने जानकीको ब्याहा, तब आपने उनको संग्राममें क्यों नहीं जीता? इन्द्रपुत्र जयन्त उनके बलको कुछ-कुछ जानता है। श्रीरामजीने पकड़कर, केवल उसकी एक आँख ही फोड़ दी और उसे जीवित ही छोड़ दिया॥ ६ ॥

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी॥ ७ ॥

शूर्पणखाकी दशा तो आपने देख ही ली। तो भी आपके हृदयमें [उनसे लड़नेकी बात सोचते] विशेष (कुछ भी) लज्जा नहीं आती! ॥ ७ ॥

दो०—बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।
बालि एक सर मार्‌यो तेहि जानहु दसकंध॥ ३६॥

जिन्होंने विराध और खर-दूषणको मारकर लीलासे ही कबन्धको भी मार डाला; और जिन्होंने वालिको एक ही बाणसे मार दिया, हे दशकन्ध! आप उन्हें (उनके महत्त्वको) समझिये! ॥ ३६ ॥

चौ०—जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला॥
कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥ १ ॥

जिन्होंने खेलसे ही समुद्रको बँधा लिया और जो प्रभु सेनासहित सुबेल पर्वतपर उतर पड़े, उन सूर्यकुलके ध्वजास्वरूप (कीर्तिको बढ़ानेवाले) करुणामय भगवान्‌ने आपहीके हितके लिये दूत भेजा॥ १ ॥

सभा माझ जेहिं तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे बीर अति बाँके॥ २ ॥

जिसने बीच सभामें आकर आपके बलको उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियोंके झुंडमें आकर सिंह [उसे छिन्न-भिन्न कर डालता है]। रणमें बाँके अत्यन्त विकट वीर अंगद और हनुमान् जिनके सेवक हैं, ॥ २ ॥

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥ ३ ॥

हे पति! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मदका बोझा ढो रहे हैं। हा प्रियतम! आपने श्रीरामजीसे विरोध कर लिया और कालके विशेष वश होनेसे आपके मनमें अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता॥ ३ ॥

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ॥ ४ ॥

काल दण्ड (लाठी) लेकर किसीको नहीं मारता। वह धर्म, बल, बुद्धि और विचारको हर लेता है। हे स्वामी! जिसका काल (मरण-समय) निकट आ जाता है, उसे आपहीकी तरह भ्रम हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु ॥ ३७ ॥

आपके दो पुत्र मारे गये और नगर जल गया। [जो हुआ सो हुआ] हे प्रियतम! अब भी [इस भूलकी] पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिये (श्रीरामजीसे वैर त्याग दीजिये); और हे नाथ! कृपाके समुद्र श्रीरघुनाथजीको भजकर निर्मल यश लीजिये ॥ ३७ ॥

चौ०—नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभाँ गयउ उठि होत बिहाना ॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली ॥ १ ॥

स्त्रीके बाणके समान वचन सुनकर वह सवेरा होते ही उठकर सभामें चला गया और सारा भय भुलाकर अत्यन्त अभिमानमें फूलकर सिंहासनपर जा बैठा ॥ १ ॥

इहाँ राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा ॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी ॥ २ ॥

यहाँ (सुवेल पर्वतपर) श्रीरामजीने अंगदको बुलाया। उन्होंने आकर चरण-कमलोंमें सिर नवाया। बड़े आदरसे उन्हें पास बैठाकर खरके शत्रु कृपालु श्रीरामजी हँसकर बोले ॥ २ ॥

बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहु पूछउँ तोही ॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका ॥ ३ ॥

हे बालिके पुत्र! मुझे बड़ा कौतूहल है। हे तात! इसीसे मैं तुमसे पूछता हूँ, सत्य कहना। जो रावण राक्षसोंके कुलका तिलक है और जिसके अतुलनीय बाहुबलकी जगत्भरमें धाक है, ॥ ३ ॥

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए ॥
सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥ ४ ॥

उसके चार मुकुट तुमने फेंके। हे तात! बताओ, तुमने उनको किस प्रकारसे पाया? [अंगदने कहा—] हे सर्वज्ञ! हे शरणागतको सुख देनेवाले! सुनिये। वे मुकुट नहीं हैं, वे तो राजाके चार गुण हैं ॥ ४ ॥

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए ॥ ५ ॥

हे नाथ! वेद कहते हैं कि साम, दान, दण्ड और भेद—ये चारों राजाके हृदयमें बसते हैं। ये नीति-धर्मके चार सुन्दर चरण हैं। [किंतु रावणमें धर्मका अभाव है] ऐसा जीमें जानकर ये नाथके पास आ गये हैं॥ ५॥

दो०—धर्महीन प्रभु पद बिमुख काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस॥ ३८(क)॥

दशशीश रावण धर्महीन, प्रभुके पदसे विमुख और कालके वशमें है। इसलिये हे कोसलराज! सुनिये, वे गुण रावणको छोड़कर आपके पास आ गये हैं॥ ३८ (क)॥

परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥ ३८(ख)॥

अंगदकी परम चतुरता [पूर्ण उक्ति] कानोंसे सुनकर उदार श्रीरामचन्द्रजी हँसने लगे, फिर बालिपुत्रने किलेके (लङ्काके) सब समाचार कहे॥ ३८ (ख)॥

चौ०—रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा॥ १॥

जब शत्रुके समाचार प्राप्त हो गये, तब श्रीरामचन्द्रजीने सब मन्त्रियोंको पास बुलाया [और कहा—] लङ्काके चार बड़े विकट दरवाजे हैं। उनपर किस तरह आक्रमण किया जाय, इसपर विचार करो॥ १॥

तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदयँ दिनकर कुल भूषन॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा॥ २॥

तब वानरराज सुग्रीव, ऋक्षपति जाम्बवान् और विभीषणने हृदयमें सूर्यकुलके भूषण श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया और विचार करके उन्होंने कर्तव्य निश्चित किया। वानरोंकी सेनाके चार दल बनाये॥ २॥

जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए॥ ३॥

और उनके लिये यथायोग्य (जैसे चाहिये वैसे) सेनापति नियुक्त किये। फिर सब यूथपतियोंको बुला लिया और प्रभुका प्रताप कहकर सबको समझाया, जिसे सुनकर वानर सिंहके समान गर्जना करके दौड़े॥ ३॥

हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥ ४॥

वे हर्षित होकर श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाते हैं और पर्वतोंके शिखर ले-लेकर सब वीर दौड़ते हैं। 'कोसलराज श्रीरघुवीरजीकी जय हो' पुकारते हुए भालू और वानर गरजते और ललकारते हैं॥ ४॥

जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहिं निसान बजावहिं भेरी॥ ५॥

लंकाको अत्यन्त श्रेष्ठ (अजेय) किला जानते हुए भी वानर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे निडर होकर चले। चारों ओरसे घिरी हुई बादलोंकी घटाकी तरह लंकाको चारों दिशाओंसे घेरकर वे मुँहसे ही डंके और भेरी बजाने लगे॥ ५॥

दो०—जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंघनाद कपि भालु महा बल सींव॥ ३९॥

महान् बलकी सीमा वे वानर-भालू सिंहके समान ऊँचे स्वरसे 'श्रीरामजीकी जय,' 'लक्ष्मणजीकी जय', 'वानरराज सुग्रीवकी जय'—ऐसी गर्जना करने लगे॥ ३९॥

चौ०—लंकाँ भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥ १॥

लंकामें बड़ा भारी कोलाहल (कोहराम) मच गया। अत्यन्त अहंकारी रावणने उसे सुनकर कहा—वानरोंकी ढिठाई तो देखो! यह कहते हुए हँसकर उसने राक्षसोंकी सेना बुलायी॥ १॥

आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा॥ २॥

बंदर कालकी प्रेरणासे चले आये हैं। मेरे राक्षस सभी भूखे हैं। विधाताने इन्हें घर बैठे भोजन भेज दिया। ऐसा कहकर उस मूर्खने अट्टहास किया (वह बड़े जोरसे ठहाका मारकर हँसा)॥ २॥

सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥ ३॥

[और बोला—] हे वीरो! सब लोग चारों दिशाओंमें जाओ और रीछ-वानर सबको पकड़-पकड़कर खाओ। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा! रावणको ऐसा अभिमान था, जैसे टिटिहिरी पक्षी पैर ऊपरकी ओर करके सोता है [मानो आकाशको थाम लेगा]॥ ३॥

चले निसाचर आयसु मागी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी॥
तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। सूल कृपान परिघ गिरिखंडा॥ ४॥

आज्ञा माँगकर और हाथोंमें उत्तम भिंदिपाल, साँगी (बरछी), तोमर, मुद्गर, प्रचण्ड फरसे, शूल, दुधारी तलवार, परिघ और पहाड़ोंके टुकड़े लेकर राक्षस चले॥ ४॥

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग मांस अहारी॥
चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा॥ ५॥

जैसे मूर्ख मांसाहारी पक्षी लाल पत्थरोंका समूह देखकर उसपर टूट पड़ते हैं, [पत्थरों-

पर लानेसे] चोंच टूटनेका दुःख उन्हें नहीं सूझता, वैसे ही वे बेसमझ राक्षस दौड़े ॥ ५ ॥

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बल बीर।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर ॥ ४० ॥

अनेकों प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण किये करोड़ों बलवान् और रणधीर राक्षस वीर परकोटेके कँगूरोंपर चढ़ गये ॥ ४० ॥

चौ०—कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ ॥ १ ॥

वे परकोटेके कँगूरोंपर कैसे शोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरुके शिखरोंपर बादल बैठे हों। जुझाऊ ढोल और डंके आदि बज रहे हैं, [जिनकी] ध्वनि सुनकर योद्धाओंके मनमें [लड़नेका] चाव होता है ॥ १ ॥

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा ॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा ॥ २ ॥

अगणित नफीरी और भेरी बज रही है, [जिन्हें] सुनकर कायरोंके हृदयमें दरारें पड़ जाती हैं। उन्होंने जाकर अत्यन्त विशाल शरीरवाले महान् योद्धा वानर और भालुओंके ठट्ट (समूह) देखे ॥ २ ॥

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा ॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं ॥ ३ ॥

[देखा कि] वे रीछ-वानर दौड़ते हैं; औघट (ऊँची-नीची, विकट) घाटियोंको कुछ नहीं गिनते। पकड़कर पहाड़ोंको फोड़कर रास्ता बना लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाते और गरजते हैं। दाँतोंसे ओंठ काटते और खूब डपटते हैं ॥ ३ ॥

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं ॥ ४ ॥

उधर रावणकी और इधर श्रीरामजीकी दोहाई बोली जा रही है। 'जय', 'जय', 'जय' की ध्वनि होते ही लड़ाई छिड़ गयी। राक्षस पहाड़ोंके ढेर-के-ढेर शिखरोंको फेंकते हैं। वानर कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं और वापस उन्हींकी ओर चलाते हैं ॥ ४ ॥

छं०—धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं ॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए ॥

प्रचण्ड वानर और भालू पर्वतोंके टुकड़े ले-लेकर किलेपर डालते हैं। वे झपटते हैं और राक्षसोंके पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वीपर पटककर भाग चलते हैं और फिर ललकारते हैं। बहुत ही चञ्चल और बड़े तेजस्वी वानर-भालू बड़ी फुर्तीसे उछलकर किलेपर चढ़-

चढ़कर गये और जहाँ-तहाँ महलोंमें घुसकर श्रीरामजीका यश गाने लगे।

दो०—एकु एकु निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ॥ ४१॥

फिर एक-एक राक्षसको पकड़कर वे वानर भाग चले। ऊपर आप और नीचे [राक्षस] योद्धा—इस प्रकार वे [किलेपरसे] धरतीपर आ गिरते हैं॥ ४१॥

चौ०—राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा॥
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर॥ १॥

श्रीरामजीके प्रतापसे प्रबल वानरोंके झुंड राक्षस योद्धाओंके समूह-के-समूह योद्धाओंको मसल रहे हैं। वानर फिर जहाँ-तहाँ किलेपर चढ़ गये और प्रतापमें सूर्यके समान श्रीरघुवीरकी जय बोलने लगे॥ १॥

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥ २॥

राक्षसोंके झुंड वैसे ही भाग चले, जैसे जोरकी हवा चलनेपर बादलोंके समूह तितर-बितर हो जाते हैं। लंका नगरीमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया। बालक, स्त्रियाँ और रोगी [असमर्थताके कारण] रोने लगे॥ २॥

सब मिलि देहिं रावनहि गारी। राज करत एहिं मृत्यु हँकारी॥
निज दल बिचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥ ३॥

सब मिलकर रावणको गालियाँ देने लगे कि राज्य करते हुए इसने मृत्युको बुला लिया। रावणने जब अपनी सेनाका विचलित होना कानोंसे सुना, तब [भागते हुए] योद्धाओंको लौटाकर वह क्रोधित होकर बोला—॥ ३॥

जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना॥ ४॥

मैं जिसे रणसे पीठ देकर भागा हुआ अपने कानों सुनूँगा, उसे स्वयं भयानक दुधारी तलवारसे मारूँगा। मेरा सब कुछ खाया, भाँति-भाँतिके भोग किये और अब रणभूमिमें प्राण प्यारे हो गये॥ ४॥

उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥ ५॥

रावणके उग्र (कठोर) वचन सुनकर सब वीर डर गये और लज्जित होकर क्रोध करके युद्धके लिये लौट चले। रणमें [शत्रुके] सम्मुख (युद्ध करते हुए) मरनेमें ही वीरकी शोभा है। [यह सोचकर] तब उन्होंने प्राणोंका लोभ छोड़ दिया॥ ५॥

दो०—बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥ ४२॥

बहुत-से अस्त्र-शस्त्र धारण किये सब वीर ललकार-ललकारकर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलोंसे मार-मारकर सब रीछ-वानरोंको व्याकुल कर दिया ॥ ४२ ॥

चौ०—भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] वानर भयातुर होकर (डरके मारे घबड़ाकर) भागने लगे, यद्यपि हे उमा ! आगे चलकर [वे ही] जीतेंगे। कोई कहता है—अंगद, हनुमान् कहाँ हैं ? बलवान् नल, नील और द्विविद कहाँ हैं ? ॥ १ ॥

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना ॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई ॥ २ ॥

हनुमान्‌जीने जब अपने दलको विकल (भयभीत) हुआ सुना, उस समय वे बलवान् पश्चिम द्वारपर थे। वहाँ उनसे मेघनाद युद्ध कर रहा था। वह द्वार टूटता न था, बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी ॥ २ ॥

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा ॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा ॥ ३ ॥

तब पवनपुत्र हनुमान्‌जीके मनमें बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे कालके समान योद्धा बड़े जोरसे गरजे और कूदकर लंकाके किलेपर आ गये और पहाड़ लेकर मेघनादकी ओर दौड़े ॥ ३ ॥

भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता ॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना ॥ ४ ॥

रथ तोड़ डाला, सारथिको मार गिराया और मेघनादकी छातीमें लात मारी, दूसरा सारथि मेघनादको व्याकुल जानकर, उसे रथमें डालकर, तुरंत घर ले आया ॥ ४ ॥

दो०—अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल ॥ ४३ ॥

इधर अंगदने सुना कि पवनपुत्र हनुमान् किलेपर अकेले ही गये हैं, तो रणमें बाँके बालिपुत्र वानरके खेलकी तरह उछलकर किलेपर चढ़ गये ॥ ४३ ॥

चौ०—जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर ॥
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई ॥ १ ॥

युद्धमें शत्रुओंके विरुद्ध दोनों वानर क्रुद्ध हो गये। हृदयमें श्रीरामजीके प्रतापका स्मरण करके दोनों दौड़कर रावणके महलपर जा चढ़े और कोसलराज श्रीरामजीकी दुहाई बोलने लगे ॥ १ ॥

कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा ॥
नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती ॥ २ ॥

उन्होंने कलशसहित महलको पकड़कर ढहा दिया। यह देखकर राक्षसराज रावण डर गया। सब स्त्रियाँ हाथोंसे छाती पीटने लगीं [और कहने लगीं—] अबकी बार दो उत्पाती वानर [एक साथ] आ गये ॥ २ ॥

कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं ॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा ॥ ३ ॥

वानरलीला करके (घुड़की देकर) दोनों उनको डराते हैं और श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश सुनाते हैं। फिर सोनेके खंभोंको हाथोंसे पकड़कर उन्होंने [परस्पर] कहा कि अब उत्पात आरम्भ किया जाय ॥ ३ ॥

गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी ॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फल लेहू ॥ ४ ॥

वे गर्जकर शत्रुकी सेनाके बीचमें कूद पड़े और अपने भारी भुजबलसे उसका मर्दन करने लगे। किसीकी लातसे और किसीकी थप्पड़से खबर लेते हैं [और कहते हैं कि] तुम श्रीरामजीको नहीं भजते, उसका यह फल लो ॥ ४ ॥

दो०—एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुंड ॥ ४४ ॥

एकको दूसरेसे [रगड़कर] मसल डालते हैं और सिरोंको तोड़कर फेंकते हैं। वे सिर जाकर रावणके सामने गिरते हैं और ऐसे फूटते हैं, मानो दहीके कूँड़े फूट रहे हों ॥ ४४ ॥

चौ०—महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा ॥ १ ॥

जिन बड़े-बड़े मुखियों (प्रधान सेनापतियों) को पकड़ पाते हैं, उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रभुके पास फेंक देते हैं। विभीषणजी उनके नाम बतलाते हैं और श्रीरामजी उन्हें भी अपना धाम (परमपद) दे देते हैं ॥ १ ॥

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी ॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंका मांस खानेवाले वे नरभोजी दुष्ट राक्षस भी वह परमगति पाते हैं जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं [परंतु सहजमें नहीं पाते]। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा! श्रीरामजी बड़े ही कोमलहृदय और करुणाकी खान हैं। [वे सोचते हैं कि] राक्षस मुझे वैरभावसे ही सही, स्मरण तो करते ही हैं ॥ २ ॥

देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी ॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी ॥ ३ ॥

ऐसा हृदयमें जानकर वे उन्हें परमगति (मोक्ष) देते हैं। हे भवानी! कहो तो ऐसे कृपालु [और] कौन हैं? प्रभुका ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्याग-

कर उनका भजन नहीं करते, वे अत्यन्त मन्दबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं ॥ ३ ॥

अंगद अरु हनुमंत प्रवेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ॥
लंकाँ द्वौ कपि सोहहिं कैसें। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसें ॥ ४ ॥

श्रीरामजीने कहा कि अंगद और हनुमान् किलेमें घुस गये हैं। दोनों वानर लङ्कामें [विध्वंस करते] कैसे शोभा देते हैं, जैसे दो मन्दराचल समुद्रको मथ रहे हों ॥ ४ ॥

दो०—भुज बल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत श्रम आए जहँ भगवंत ॥ ४५ ॥

भुजाओंके बलसे शत्रुकी सेनाको कुचलकर और मसलकर, फिर दिनका अन्त होता देखकर हनुमान् और अंगद दोनों कूद पड़े और श्रम (थकावट) रहित होकर वहाँ आ गये, जहाँ भगवान् श्रीरामजी थे ॥ ४५ ॥

चौ०—प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए ॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतश्रम परम सुखारे ॥ १ ॥

उन्होंने प्रभुके चरणकमलोंमें सिर नवाये। उत्तम योद्धाओंको देखकर श्रीरघुनाथजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए। श्रीरामजीने कृपा करके दोनोंको देखा, जिससे वे श्रमरहित और परम सुखी हो गये ॥ १ ॥

गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना ॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई ॥ २ ॥

अंगद और हनुमान्‌को गये जानकर सभी भालू और वानर वीर लौट पड़े। राक्षसोंने प्रदोष (सायं) कालका बल पाकर रावणकी दुहाई देते हुए वानरोंपर धावा किया ॥ २ ॥

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे ॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी ॥ ३ ॥

राक्षसोंकी सेना आती देखकर वानर लौट पड़े और वे योद्धा जहाँ-तहाँ कटकटाकर भिड़ गये। दोनों ही दल बड़े बलवान् हैं। योद्धा ललकार-ललकारकर लड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते ॥ ३ ॥

महाबीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे ॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा ॥ ४ ॥

सभी राक्षस महान् वीर और अत्यन्त काले हैं और वानर विशालकाय तथा अनेकों रंगोंके हैं। दोनों ही दल बलवान् हैं और समान बलवाले योद्धा हैं। वे क्रोध करके लड़ते हैं और खेल करते (वीरता दिखलाते) हैं ॥ ४ ॥

प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे ॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया ॥ ५ ॥

[राक्षस और वानर युद्ध करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं] मानो क्रमशः वर्षा और

शरद्-ऋतुके बहुत-से बादल पवनसे प्रेरित होकर लड़ रहे हों। अकंपन और अतिकाय इन सेनापतियोंने अपनी सेनाको विचलित होते देखकर माया की ॥ ५ ॥

भयउ निमिष महँ अति अँधिआरा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ॥ ६ ॥

पलभरमें अत्यन्त अन्धकार हो गया। खून, पत्थर और राखकी वर्षा होने लगी ॥ ६ ॥

दो०—देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार।
एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार ॥ ४६ ॥

दसों दिशाओंमें अत्यन्त घना अन्धकार देखकर वानरोंकी सेनामें खलबली पड़ गयी। एकको एक (दूसरा) नहीं देख सकता और सब जहाँ-तहाँ पुकार कर रहे हैं ॥४६॥

चौ०—सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना ॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी सब रहस्य जान गये। उन्होंने अंगद और हनुमान्‌को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही वे दोनों कपिश्रेष्ठ क्रोध करके दौड़े ॥ १ ॥

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ॥ २ ॥

फिर कृपालु श्रीरामजीने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरंत ही अग्निबाण चलाया, जिससे प्रकाश हो गया; कहीं अँधेरा नहीं रह गया। जैसे ज्ञानके उदय होनेपर [सब प्रकारके] संदेह दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरष बिगतश्रम त्रासा ॥
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥ ३ ॥

भालू और वानर प्रकाश पाकर श्रम और भयसे रहित तथा प्रसन्न होकर दौड़े। हनुमान् और अंगद रणमें गरज उठे। उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग छूटे ॥ ३ ॥

भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी ॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं ॥ ४ ॥

भागते हुए राक्षस योद्धाओंको वानर और भालू पकड़कर पृथ्वीपर दे मारते हैं और अद्भुत (आश्चर्यजनक) करनी करते हैं (युद्धकौशल दिखलाते हैं)। पैर पकड़कर उन्हें समुद्रमें डाल देते हैं। वहाँ मगर, साँप और मच्छ उन्हें पकड़-पकड़कर खा डालते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख रिपुदल बल बिचलाइ ॥ ४७ ॥

कुछ मारे गये, कुछ घायल हुए, कुछ भागकर गढ़पर चढ़ गये। अपने बलसे शत्रुदलको विचलित करके रीछ और वानर [वीर] गरज रहे हैं ॥ ४७ ॥

चौ०—निसा जानि कपि चारिउ अनी । आए जहाँ कोसला धनी ॥
राम कृपा करि चितवा सबही । भए बिगतश्रम बानर तबही ॥ १ ॥
रात हुई जानकर वानरोंकी चारों सेनाएँ (टुकड़ियाँ) वहाँ आयीं, जहाँ कोसल-पति श्रीरामजी थे । श्रीरामजीने ज्यों ही सबको कृपा करके देखा, त्यों ही ये वानर श्रम-रहित हो गये ॥ १ ॥

उहाँ दसानन सचिव हँकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥
आधा कटकु कपिन्ह संघारा । कहहु बेगि का करिअ बिचारा ॥ २ ॥
वहाँ [लङ्कामें] रावणने मन्त्रियोंको बुलाया और जो योद्धा मारे गये थे, उन सबको सबसे बताया । [उसने कहा—] वानरोंने आधी सेनाका संहार कर दिया । अब शीघ्र बताओ, क्या विचार (उपाय) करना चाहिये ? ॥ २ ॥

माल्यवंत अति जरठ निसाचर । रावन मातु पिता मंत्री बर ॥
बोला बचन नीति अति पावन । सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥ ३ ॥
माल्यवंत [नामका एक] अत्यन्त बूढ़ा राक्षस था । वह रावणकी माताका पिता (अर्थात् उसका नाना) और श्रेष्ठ मन्त्री था । वह अत्यन्त पवित्र नीतिके वचन बोला—हे तात ! कुछ मेरी सीख भी सुनो—॥ ३ ॥

जब ते तुम्ह सीता हरि आनी । असगुन होहिं न जाहिं बखानी ॥
बेद पुरान जासु जसु गायो । राम बिमुख काहुँ न सुख पायो ॥ ४ ॥
जबसे तुम सीताको हर लाये हो, तबसे इतने अपशकुन हो रहे हैं कि जो वर्णन नहीं किये जा सकते । वेद-पुराणोंने जिनका यश गाया है, उन श्रीरामसे विमुख होकर किसीने सुख नहीं पाया ॥ ४ ॥

दो०—हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान ।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥ ४८ (क) ॥
भाई हिरण्यकशिपुसहित हिरण्याक्षको और बलवान् मधु-कैटभको जिन्होंने मारा था; वे ही कृपाके समुद्र भगवान् [रामरूपसे] अवतरित हुए हैं ॥ ४८ (क) ॥

मासपारायण, पचीसवाँ विश्राम

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध ।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ॥ ४८ (ख) ॥
जो कालस्वरूप हैं, दुष्टोंके समूहरूपी वनको भस्म करनेवाले [अग्नि] हैं, गुणोंके धाम और ज्ञानघन हैं एवं शिवजी और ब्रह्माजी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा ? ॥ ४८ (ख) ॥

चौ०—परिहरि बयरु देहु बैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
ताके बचन बान सम लागे । करिआ मुह करि जाहि अभागे ॥ १ ॥

[अतः] वैर छोड़कर उन्हें जानकीजीको दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्रीरामजीका भजन करो। रावणको उसके वचन बाणके समान लगे। [वह बोला—] अरे अभागे! मुँह काला करके [यहाँसे] निकल जा ॥ १ ॥

बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही ॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना ॥ २ ॥

तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता। अब मेरी आँखोंको अपना मुँह न दिखला। रावणके ये वचन सुनकर उसने (माल्यवान्‌ने) अपने मनमें ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्रीरामजी अब मारना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा ॥ ३ ॥

वह रावणको दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला—सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा; थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा) ॥ ३ ॥

सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा ॥
करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ॥ ४ ॥

पुत्रके वचन सुनकर रावणको भरोसा आ गया। उसने प्रेमके साथ उसे गोदमें बैठा लिया। विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजोंपर जा लगे ॥ ४ ॥

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा ॥
बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए ॥ ५ ॥

वानरोंने क्रोध करके दुर्गम किलेको घेर लिया। नगरमें बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरहके अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किलेपरसे पहाड़ोंके शिखर ढहाये ॥ ५ ॥

छं०—ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले ॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए ॥

उन्होंने पर्वतोंके करोड़ों शिखर ढहाये, अनेक प्रकारसे गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और योद्धा ऐसे गरजते हैं मानो प्रलयकालके बादल हों। विकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत

नहीं हारते)। वे पहाड़ उठाकर उसे किलेपर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ-के-तहाँ (जो जहाँ होते हैं वहीं) मारे जाते हैं।

दो०—मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।
उतर्‍यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ ॥ ४९ ॥

मेघनादने कानोंसे ऐसा सुना कि वानरोंने आकर फिर किलेको घेर लिया है। तब वह वीर किलेसे उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला ॥ ४९ ॥

चौ०—कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा ॥ १ ॥

[मेघनादने पुकारकर कहा—] समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बलकी सीमा अंगद और हनुमान् कहाँ हैं? ॥ १ ॥

कहाँ बिभीषनु भ्राताद्रोही। आजु सबहि हठि मारउँ ओही ॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने ॥ २ ॥

भाईसे द्रोह करनेवाला विभीषण कहाँ है? आज मैं सबको और उस दुष्टको तो हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा। ऐसा कहकर उसने धनुषपर कठिन बाणोंका संधान किया और अत्यन्त क्रोध करके उसे कानतक खींचा ॥ २ ॥

सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर ॥ ३ ॥

वह बाणोंके समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत-से पंखवाले साँप दौड़े जा रहे हों। जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखायी पड़ने लगे। उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके ॥३॥

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा ॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा ॥ ४ ॥

रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले। सबको युद्धकी इच्छा भूल गयी। रणभूमिमें ऐसा एक भी वानर या भालू नहीं दिखायी पड़ा, जिसको उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात् जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हों; बल, पुरुषार्थ सारा जाता न रहा हो) ॥ ४ ॥

दो०—दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर ॥ ५० ॥

फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे, वानर वीर पृथ्वीपर गिर पड़े। बलवान् और धीर मेघनाद सिंहके समान नाद करके गरजने लगा ॥ ५० ॥

चौ०—देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला ॥
महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा ॥ १ ॥

सारी सेनाको बेहाल (व्याकुल) देखकर पवनपुत्र हनुमान् क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो स्वयं काल दौड़ा आता हो। उन्होंने तुरंत एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोधके साथ उसे मेघनादपर छोड़ा ॥ १ ॥

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥ २ ॥

पहाड़को आते देखकर वह आकाशमें उड़ गया। [उसके] रथ, सारथि और घोड़े सब नष्ट हो गये (चूर-चूर हो गये)। हनुमान्‌जी उसे बार-बार ललकारते हैं, पर वह निकट नहीं आता; क्योंकि वह उनके बलका मर्म जानता था ॥ २ ॥

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥ ३ ॥

[तब] मेघनाद श्रीरघुनाथजीके पास गया और उसने [उनके प्रति] अनेकों प्रकारके दुर्वचनोंका प्रयोग किया। [फिर] उसने उनपर अस्त्र-शस्त्र तथा और सब हथियार चलाये। प्रभुने खेलमें ही सबको काटकर अलग कर दिया ॥ ३ ॥

देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥ ४ ॥

श्रीरामजीका प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लज्जित हो गया और अनेकों प्रकारकी माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा-सा साँपका बच्चा हाथमें लेकर गरुड़को डरावे और उससे खेल करे ॥ ४ ॥

दो०—जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट॥ ५१ ॥

शिवजी और ब्रह्माजीतक बड़े-छोटे [सभी] जिनकी अत्यन्त बलवान् मायाके वशमें हैं, नीचबुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है ॥ ५१ ॥

चौ०—नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥ १ ॥

आकाशमें [ऊँचे] चढ़कर वह बहुत-से अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वीसे जलकी धाराएँ प्रकट होने लगीं। अनेक प्रकारके पिशाच तथा पिशाचिनियाँ नाच-नाचकर 'मारो, काटो' की आवाज करने लगीं ॥ १ ॥

बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥ २ ॥

वह कभी तो विष्ठा, पीब, खून, बाल और हड्डियाँ बरसाता था और कभी बहुत-से पत्थर फेंक देता था। फिर उसने धूल बरसाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही पसारा हुआ हाथ नहीं सूझता था ॥ २ ॥

कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना एहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥ ३॥

माया देखकर वानर अकुला उठे। वे सोचने लगे कि इस हिसाबसे (इसी तरह रहा) तो सबका मरण आ बना। यह कौतुक देखकर श्रीरामजी मुसकराये। उन्होंने जान लिया कि सब वानर भयभीत हो गये हैं॥ ३॥

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥ ४॥

तब श्रीरामजीने एक ही बाणसे सारी माया काट डाली, जैसे सूर्य अन्धकारके समूहको हर लेता है। तदनन्तर उन्होंने कृपाभरी दृष्टिसे वानर-भालुओंकी ओर देखा, [जिससे] वे ऐसे प्रबल हो गये कि रणमें रोकनेपर भी नहीं रुकते थे॥ ४॥

दो०—आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥ ५२॥

श्रीरामजीसे आज्ञा माँगकर, अंगद आदि वानरोंके साथ हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए श्रीलक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर चले॥ ५२॥

चौ०—छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥ १॥

उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं। हिमाचल पर्वतके समान उज्ज्वल (गौरवर्ण) शरीर कुछ ललाई लिये हुए है। इधर रावणने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे, जो अनेकों अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े॥ १॥

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥ २॥

पर्वत, नख और वृक्षरूपी हथियार धारण किये हुए वानर 'श्रीरामचन्द्रजीकी जय' पुकारकर दौड़े। वानर और राक्षस सब जोड़ी-से-जोड़ी भिड़ गये। इधर और उधर दोनों ओर जयकी इच्छा कम न थी (अर्थात् प्रबल थी)॥ २॥

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥ ३॥

वानर उनको घूँसों और लातोंसे मारते हैं, दाँतोंसे काटते हैं। विजयशील वानर उन्हें मारकर फिर डाँटते भी हैं। 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, सिर तोड़ दो और भुजाएँ पकड़कर उखाड़ लो'॥ ३॥

असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा॥
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥

नवों खण्डोंमें ऐसी आवाज भर रही है। प्रचण्ड रुण्ड (धड़) जहाँ-तहाँ दौड़

रहे हैं। आकाशमें देवतागण यह कौतुक देख रहे हैं। उन्हें कभी खेद होता है और कभी आनन्द ॥ ४ ॥

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ ॥ ५३ ॥

खून गड्ढोंमें भर-भरकर जम गया है और उसपर धूल उड़कर पड़ रही है। [वह दृश्य ऐसा है] मानो अंगारोंके ढेरोंपर राख छा रही हो ॥ ५३ ॥

चौ०—घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे ॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ॥ १ ॥

घायल वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पलासके पेड़। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध करके एक-दूसरेसे भिड़ते हैं ॥ १ ॥

एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती ॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता ॥ २ ॥

एक दूसरेको (कोई किसीको) जीत नहीं सकता। राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है, तब भगवान् अनन्तजी (लक्ष्मणजी) क्रोधित हुए और उन्होंने तुरंत उसके रथको तोड़ डाला और सारथिको टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २ ॥

नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा ॥
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकठ भयउ हरिहि मम प्राना ॥ ३ ॥

शेषजी (लक्ष्मणजी) उसपर अनेक प्रकारसे प्रहार करने लगे। राक्षसके प्राणमात्र शेष रह गये। रावणपुत्र मेघनादने मनमें अनुमान किया कि अब तो प्राणसंकट आ बना, ये मेरे प्राण हर लेंगे ॥ ३ ॥

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी ॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें ॥ ४ ॥

तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलायी। वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मणजीकी छातीमें लगी। शक्तिके लगनेसे उन्हें मूर्च्छा आ गयी, तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया ॥ ४ ॥

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ ॥ ५४ ॥

मेघनादके समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं। परंतु जगत्के आधार श्रीशेषजी (लक्ष्मणजी) उनसे कैसे उठते ? तब वे लजाकर चले गये ॥ ५४ ॥

चौ०—सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे ! सुनो, [प्रलयकालमें] जिन (शेषनाग) के

क्रोधकी अग्नि चौदहों भुवनोंको तुरंत ही जला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर [जीव] जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राममें कौन जीत सकता है ? ॥ १ ॥

यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई॥
संध्या भइ फिरि द्वौ बाहनी। लगे सँभारन निज निज अनी॥ २॥

इस लीलाको वही जान सकता है, जिसपर श्रीरामजीकी कृपा हो। संध्या होनेपर दोनों ओरकी सेनाएँ लौट पड़ीं; सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ सँभालने लगे॥ २॥

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥ ३॥

व्यापक, ब्रह्म, अजेय, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके ईश्वर और करुणाकी खान श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—लक्ष्मण कहाँ हैं ? तबतक हनुमान् उन्हें ले आये, छोटे भाईको [इस दशामें] देखकर प्रभुने बहुत ही दुःख माना॥ ३॥

जामवंत कह बैद सुषेना। लंकाँ रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥ ४॥

जाम्बवान्‌ने कहा—लङ्कामें सुषेण वैद्य रहता है, उसे ले आनेके लिये किसको भेजा जाय ? हनुमान्‌जी छोटा रूप धरकर गये और सुषेणको उसके घरसमेत तुरंत ही उठा लाये॥ ४॥

दो०—राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥ ५५॥

सुषेणने आकर श्रीरामजीके चरणारविन्दोंमें सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध-का नाम बताया, [और कहा कि] हे पवनपुत्र ! ओषधि लेने जाओ॥ ५५॥

चौ०—राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा॥ १॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंको हृदयमें रखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी अपना बल बखानकर (अर्थात् मैं अभी लिये आता हूँ, ऐसा कहकर) चले। उधर एक गुप्तचरने रावणको इस रहस्यकी खबर दी। तब रावण कालनेमिके घर आया॥ १॥

दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥ २॥

रावणने उसको सारा मर्म (हाल) बतलाया। कालनेमिने सुना और बार-बार सिर पीटा (खेद प्रकट किया)। [उसने कहा—] तुम्हारे देखते-देखते जिसने नगर जला डाला, उसका मार्ग कौन रोक सकता है ? ॥ २॥

भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना॥
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा॥ ३॥

श्रीरघुनाथजीका भजन करके तुम अपना कल्याण करो। हे नाथ! झूठी बकवाद छोड़ दो। नेत्रोंको आनन्द देनेवाले नीलकमलके समान सुन्दर श्याम शरीरको अपने हृदयमें रखो ॥ ३ ॥

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू ॥
काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई ॥ ४ ॥

मैं-तू (भेद-भाव) और ममतारूपी मूढ़ताको त्याग दो। महामोह (अज्ञान) रूपी रात्रिमें सो रहे हो, सो जाग उठो। जो कालरूपी सर्पका भी भक्षक है, कहीं स्वप्नमें भी वह रणमें जीता जा सकता है? ॥ ४ ॥

दो०—सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु यह खल रत मल भार ॥ ५६ ॥

उसकी ये बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ। तब कालनेमिने मनमें विचार किया कि [इसके हाथसे मरनेकी अपेक्षा] श्रीरामजीके दूतके हाथसे ही मरूँ तो अच्छा है। यह दुष्ट तो पापसमूहमें रत है ॥ ५६ ॥

चौ०—अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया ॥
मारुतसुत देखा सुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम ॥ १ ॥

वह मन-ही-मन ऐसा कहकर चला और उसने मार्गमें माया रची। तालाब, मन्दिर और सुन्दर बाग बनाया। हनुमान्‌जीने सुन्दर आश्रम देखकर सोचा कि मुनिसे पूछकर जल पी लूँ, जिससे थकावट दूर हो जाय ॥ १ ॥

राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा ॥
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा ॥ २ ॥

राक्षस वहाँ कपट [से मुनि] का वेष बनाये विराजमान था। वह मूर्ख अपनी मायासे मायापतिके दूतको मोहित करना चाहता था। मारुतिने उसके पास जाकर मस्तक नवाया। वह श्रीरामजीके गुणोंकी कथा कहने लगा ॥ २ ॥

होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं ॥
इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकाई ॥ ३ ॥

[वह बोला—] रावण और राममें महान् युद्ध हो रहा है। रामजी जीतेंगे इसमें संदेह नहीं है। हे भाई! मैं यहाँ रहता हुआ ही सब देख रहा हूँ। मुझे ज्ञानदृष्टिका बहुत बड़ा बल है ॥ ३ ॥

मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल ॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु ॥ ४ ॥

हनुमान्‌जीने उससे जल माँगा, तो उसने कमण्डलु दे दिया। हनुमान्‌जीने

कहा—थोड़े जलसे मैं तृप्त नहीं होनेका। तब वह बोला—तालावमें स्नान करके तुरंत लौट आओ तो मैं तुम्हें दीक्षा दूँ, जिससे तुम ज्ञान प्राप्त करो॥ ४॥

दो०—सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥ ५७॥

तालाबमें प्रवेश करते ही एक मगरीने अकुलाकर उसी समय हनुमान्‌जीका पैर पकड़ लिया। हनुमान्‌जीने उसे मार डाला। तब वह दिव्य देह धारण करके विमानपर चढ़कर आकाशको चली॥ ५७॥

चौ०—कपि तव दरस भइउँ निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥ १॥

[उसने कहा—] हे वानर! मैं तुम्हारे दर्शनसे पापरहित हो गयी। हे तात! श्रेष्ठ मुनिका शाप मिट गया। हे कपि! यह मुनि नहीं है, घोर निशाचर है। मेरा वचन सत्य मानो॥ १॥

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू॥ २॥

ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गयी, त्यों ही हनुमान्‌जी निशाचरके पास गये। हनुमान्‌जीने कहा—हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा ले लीजिये। पीछे आप मुझे मन्त्र दीजियेगा॥ २॥

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना॥ ३॥

हनुमान्‌जीने उसके सिरको पूँछमें लपेटकर उसे पछाड़ दिया। मरते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया। उसने राम-राम कहकर प्राण छोड़े। यह (उसके मुँहसे राम-नामका उच्चारण) सुनकर हनुमान्‌जी मनमें हर्षित होकर चले॥ ३॥

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥ ४॥

उन्होंने पर्वतको देखा, पर औषध न पहचान सके। तब हनुमान्‌जीने एकदमसे पर्वतको ही उखाड़ लिया। पर्वत लेकर हनुमान्‌जी रातहीमें आकाशमार्गसे दौड़ चले और अयोध्यापुरीके ऊपर पहुँच गये॥ ४॥

दो०—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥ ५८॥

भरतजीने आकाशमें अत्यन्त विशाल स्वरूप देखा, तब मनमें अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने कानतक धनुषको खींचकर बिना फलका एक बाण मारा॥ ५८॥

चौ०—परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥ १॥

बाण लगते ही हनुमान्‌जी 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। प्रिय वचन (रामनाम) सुनकर भरतजी उठकर दौड़े और बड़ी उतावलीसे हनुमान्‌जीके पास आये॥ १॥

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी॥ २॥

हनुमान्‌जीको व्याकुल देखकर उन्होंने हृदयसे लगा लिया। बहुत तरहसे जगाया, पर वे जागते न थे। तब भरतजीका मुख उदास हो गया। वे मनमें बड़े दुखी हुए और नेत्रोंमें [विषादके आँसुओंका] जल भरकर ये वचन बोले—॥ २॥

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा॥
जौं मोरें मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया॥ ३॥

जिस विधाताने मुझे श्रीरामसे विमुख किया, उसीने फिर यह भयानक दुःख भी दिया। यदि मन, वचन और शरीरसे श्रीरामजीके चरणकमलोंमें मेरा निष्कपट प्रेम हो, ॥ ३॥

तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥ ४॥

और यदि श्रीरघुनाथजी मुझपर प्रसन्न हों तो यह वानर थकावट और पीड़ासे रहित हो जाय। यह वचन सुनते ही कपिराज हनुमान्‌जी 'कोसलपति श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जय हो' कहते हुए उठ बैठे॥ ४॥

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक॥ ५९॥

भरतजीने वानर (हनुमान्‌जी) को हृदयसे लगा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें [आनन्द तथा प्रेमके आँसुओंका] जल भर आया। रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके भरतजीके हृदयमें प्रीति समाती न थी॥ ५९॥

चौ०—तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥ १॥

[भरतजी बोले—] हे तात! छोटे भाई लक्ष्मण तथा माता जानकीसहित सुखनिधान श्रीरामजीकी कुशल कहो। वानर (हनुमान्‌जी) ने संक्षेपमें सब कथा कही। सुनकर भरतजी दुखी हुए और मनमें पछताने लगे॥ १॥

अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥ २॥

हा दैव! मैं जगत्‌में क्यों जन्मा? प्रभुके एक भी काम न आया। फिर कुअवसर (विपरीत समय) जानकर मनमें धीरज धरकर बलवीर भरतजी हनुमान्‌जीसे बोले—॥२॥

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥ ३॥

हे तात! तुमको जानेमें देर होगी और सवेरा होते ही काम बिगड़ जायगा। [अतः] तुम पर्वतसहित मेरे बाणपर चढ़ जाओ, मैं तुमको वहाँ भेज दूँ जहाँ कृपाके धाम श्रीरामजी हैं॥ ३॥

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥ ४॥

भरतजीकी यह बात सुनकर [एक बार तो] हनुमान्‌जीके मनमें अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझसे बाण कैसे चलेगा? [किंतु] फिर श्रीरामचन्द्रजीके प्रभावका विचार करके वे भरतजीके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर बोले—॥ ४॥

दो०—तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥ ६० (क)॥

हे नाथ! हे प्रभो! मैं आपका प्रताप हृदयमें रखकर तुरंत चला जाऊँगा। ऐसा कहकर आज्ञा पाकर और भरतजीके चरणोंकी वन्दना करके हनुमान्‌जी चले॥ ६० (क)॥

भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥ ६० (ख)॥

भरतजीके बाहुबल, शील (सुन्दर स्वभाव), गुण और प्रभुके चरणोंमें अपार प्रेमकी मन-ही-मन बारंबार सराहना करते हुए मारुति श्रीहनुमान्‌जी चले जा रहे हैं॥ ६० (ख)॥

चौ०—उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥ १॥

वहाँ लक्ष्मणजीको देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्योंके अनुसार (समान) वचन बोले—आधी रात बीत चुकी, हनुमान् नहीं आये। यह कहकर श्रीरामजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया॥ १॥

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥ २॥

[और बोले—] हे भाई! तुम मुझे कभी दुखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदासे ही कोमल था। मेरे हितके लिये तुमने माता-पिताको भी छोड़ दिया और वनमें जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया॥ २॥

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥ ३॥

हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुलतापूर्ण वचन सुनकर उठते क्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वनमें भाईका विछोह होगा तो मैं पिताका वचन [जिसका मानना मेरे लिये परम कर्तव्य था] उसे भी न मानता॥ ३॥

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥ ४॥

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार—ये जगत्में बार-बार होते और जाते हैं, परंतु जगत्में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदयमें ऐसा विचारकर हे तात! जागो॥४॥

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥ ५॥

जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़ बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यन्त दीन हो जाते हैं। हे भाई! यदि कहीं जड़ दैव मुझे जीवित रक्खे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा॥ ५॥

जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥ ६॥

स्त्रीके लिये प्यारे भाईको खोकर, मैं कौन-सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा? मैं जगत्में बदनामी भले ही सह लेता (कि राममें कुछ भी वीरता नहीं है, जो स्त्रीको खो बैठे)। स्त्रीकी हानिसे [इस हानिको देखते] कोई विशेष क्षति नहीं थी॥ ६॥

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥ ७॥

अब तो हे पुत्र! मेरा निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी माताके एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो॥ ७॥

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥ ८॥

सब प्रकारसे सुख देनेवाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (समझाते) क्यों नहीं?॥ ८॥

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥ ९॥

सोचसे छुड़ानेवाले श्रीरामजी बहुत प्रकारसे सोच कर रहे हैं। उनके कमलकी पँखुड़ीके समान नेत्रोंसे [विषादके आँसुओंका] जल बह रहा है। [शिवजी कहते हैं—]

हे उमा ! श्रीरघुनाथजी एक (अद्वितीय) और अखण्ड (वियोगरहित) हैं । भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान्‌ने [लीला करके] मनुष्यकी दशा दिखलायी है ॥ ९ ॥

सो०—प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर ।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस ॥ ६१ ॥

प्रभुके [लीलाके लिये किये गये] प्रलापको कानोंसे सुनकर वानरोंके समूह व्याकुल हो गये । [इतनेमें ही] हनुमान्‌जी आ गये, जैसे करुणरस [के प्रसङ्ग] में वीररस [का प्रसङ्ग] आ गया हो ॥ ६१ ॥

चौ०—हरषि राम भेंटेउ हनुमाना । अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना ॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई । उठि बैठे लछिमन हरषाई ॥ १ ॥

श्रीरामजी हर्षित होकर हनुमान्‌जीसे गले लगकर मिले । प्रभु परम सुजान (चतुर) और अत्यन्त ही कृतज्ञ हैं । तब वैद्य (सुषेण) ने तुरंत उपाय किया, [जिससे] लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे ॥ १ ॥

हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता । हरषे सकल भालु कपि ब्राता ॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा । जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा ॥ २ ॥

प्रभु भाईको हृदयसे लगाकर मिले । भालू और वानरोंके समूह सब हर्षित हो गये । फिर हनुमान्‌जीने वैद्यको उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया, जिस प्रकार वे उस बार (पहले) उसे ले आये थे ॥ २ ॥

यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ । अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा । बिबिध जतन करि ताहि जगावा ॥ ३ ॥

यह समाचार जब रावणने सुना, तब उसने अत्यन्त विषादसे बार-बार सिर पीटा । वह व्याकुल होकर कुम्भकर्णके पास गया और बहुत-से उपाय करके उसने उसको जगाया ॥ ३ ॥

जागा निसिचर देखिअ कैसा । मानहुँ कालु देह धरि बैसा ॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई । काहे तव मुख रहे सुखाई ॥ ४ ॥

कुम्भकर्ण जगा (उठ बैठा) । वह कैसा दिखायी देता है, मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो । कुम्भकर्णने पूछा—हे भाई ! कहो तो तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं ? ॥ ४ ॥

कथा कही सब तेहिं अभिमानी । जेहि प्रकार सीता हरि आनी ॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे । महा महा जोधा संघारे ॥ ५ ॥

उस अभिमानी (रावण) ने उससे जिस प्रकारसे वह सीताको हर लाया था [तबसे अबतककी] सारी कथा कही । [फिर कहा—] हे तात ! वानरोंने सब राक्षस मार डाले । बड़े-बड़े योद्धाओंका भी संहार कर डाला ॥ ५ ॥

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥ ६॥

दुर्मुख, देवशत्रु (देवान्तक), मनुष्यभक्षक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिकाय और अकम्पन तथा महोदर आदि दूसरे सभी रणधीर वीर रणभूमिमें मारे गये॥ ६॥

दो०—सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥ ६२॥

तब रावणके वचन सुनकर कुम्भकर्ण बिलखकर (दुखी होकर) बोला—अरे मूर्ख! जगज्जननी जानकीको हर लाकर अब तू कल्याण चाहता है?॥ ६२॥

चौ०—भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥ १॥

हे राक्षसराज! तूने अच्छा नहीं किया। अब आकर मुझे क्या जगाया? हे तात! अब भी अभिमान छोड़कर श्रीरामजीको भजो तो कल्याण होगा॥ १॥

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥ २॥

हे रावण! जिनके हनुमान्-सरीखे सेवक हैं, वे श्रीरघुनाथजी क्या मनुष्य हैं? हाय भाई! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया॥ २॥

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा॥ ३॥

हे स्वामी! तुमने उस परम देवताका विरोध किया, जिसके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं। नारद मुनिने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुझसे कहता; पर अब तो समय जाता रहा॥ ३॥

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥ ४॥

हे भाई! अब तो [अन्तिम बार] अँकवार भरकर मुझसे मिल ले। मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ। तीनों तापोंको छुड़ानेवाले श्यामशरीर, कमलनेत्र श्रीरामजीके जाकर दर्शन करूँ॥ ४॥

दो०—राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥ ६३॥

श्रीरामचन्द्रजीके रूप और गुणोंको स्मरण करके वह एक क्षणके लिये प्रेममें मग्न हो गया। फिर रावणसे करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मँगवाये॥ ६३॥

चौ०—महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥ १॥

भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह वज्रघात (बिजली गिरने) के समान गरजा। मदसे चूर रणके उत्साहसे पूर्ण कुम्भकर्ण किला छोड़कर चला। सेना भी साथ नहीं ली॥ १॥

देखि बिभीषनु आगें आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो। रघुपति भक्त जानि मन भायो॥ २॥

उसे देखकर विभीषण आगे आये और उसके चरणोंपर गिरकर अपना नाम सुनाया। छोटे भाईको उठाकर उसने हृदयसे लगा लिया और श्रीरघुनाथजीका भक्त जानकर वे उसके मनको प्रिय लगे॥ २॥

तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउँ॥ ३॥

[विभीषणने कहा—] हे तात! परम हितकर सलाह एवं विचार कहनेपर रावणने मुझे लात मारी। उसी ग्लानिके मारे मैं श्रीरघुनाथजीके पास चला आया। दीन देखकर प्रभुके मनको मैं [बहुत] प्रिय लगा॥ ३॥

सुनु सुत भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥ ४॥

[कुम्भकर्णने कहा—] हे पुत्र! सुन, रावण तो कालके वश हो गया है (उसके सिरपर मृत्यु नाच रही है)। वह क्या अब उत्तम शिक्षा मान सकता है? हे विभीषण! तू धन्य है, धन्य है, धन्य है। हे तात! तू राक्षसकुलका भूषण हो गया॥ ४॥

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥ ५॥

हे भाई! तूने अपने कुलको देदीप्यमान कर दिया, जो शोभा और सुखके समुद्र श्रीरामजीको भजा॥ ५॥

दो०—बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥ ६४॥

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर रणधीर श्रीरामजीका भजन करना। हे भाई! मैं काल (मृत्यु) के वश हो गया हूँ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझता; इसलिये अब तुम जाओ॥ ६४॥

चौ०—बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥ १॥

भाईके वचन सुनकर विभीषण लौट गये और वहाँ आये, जहाँ त्रिलोकीके भूषण श्रीरामजी थे। [विभीषणने कहा—] हे नाथ! पर्वतके समान [विशाल] देहवाला रणधीर कुम्भकर्ण आ रहा है॥ १॥

एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥ २॥

वानरोंने जब कानोंसे इतना सुना, तब वे बलवान् किलकिलाकर (हर्षध्वनि करके) दौड़े। वृक्ष और पर्वत [उखाड़कर] उठा लिये और [क्रोधसे] दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर डालने लगे॥ २॥

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो॥ ३॥

रीछ-वानर एक-एक बारमें ही करोड़ों पहाड़ोंके शिखरोंसे उसपर प्रहार करते हैं; परंतु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदारके फलोंकी मारसे हाथीपर कुछ भी असर नहीं होता!॥ ३॥

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥ ४॥

तब हनुमान्‌जीने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। फिर उसने उठकर हनुमान्‌जीको मारा। वे चक्कर खाकर तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४॥

पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥
चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥ ५॥

फिर उसने नल-नीलको पृथ्वीपर पछाड़ दिया और दूसरे योद्धाओंको भी जहाँ-तहाँ पटक-पटककर डाल दिया। वानरसेना भाग चली। सब अत्यन्त भयभीत हो गये, कोई सामने नहीं आता॥ ५॥

दो०—अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव॥ ६५॥

सुग्रीवसमेत अंगदादि वानरोंको मूर्च्छित करके फिर वह अपरिमित बलकी सीमा कुम्भकर्ण वानरराज सुग्रीवको काँखमें दाबकर चला॥ ६५॥

चौ०—उमा करत रघुपति नर लीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥ १॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! श्रीरघुनाथजी वैसे ही नरलीला कर रहे हैं, जैसे गरुड़ सर्पोंके समूहमें मिलकर खेलता हो। जो भौंहके इशारेमात्रसे (बिना परिश्रमके) कालको भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई शोभा देती है?॥ १॥

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥ २॥

भगवान् [इसके द्वारा] जगत्‌को पवित्र करनेवाली वह कीर्ति फैलायेंगे जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागरसे तर जायँगे। मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति हनुमान्‌जी जागे और फिर वे सुग्रीवको खोजने लगे ॥ २ ॥

सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना॥ ३ ॥

सुग्रीवकी भी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे [मुर्दे-से होकर] खिसक गये (काँखसे नीचे गिर पड़े)। कुम्भकर्णने उनको मृतक जाना। उन्होंने कुम्भकर्णके नाक-कान दाँतोंसे काट लिये और फिर गरजकर आकाशकी ओर चले, तब कुम्भकर्णने जाना ॥ ३ ॥

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा। अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा॥
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥ ४ ॥

उसने सुग्रीवका पैर पकड़कर उनको पृथ्वीपर पछाड़ दिया। फिर सुग्रीवने बड़ी फुर्तीसे उठकर उसको मारा और तब बलवान् सुग्रीव प्रभुके पास आये और बोले—कृपानिधान प्रभुकी जय हो, जय हो, जय हो ॥ ४ ॥

नाक कान काटे जियँ जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा॥ ५ ॥

नाक-कान काटे गये, ऐसा मनमें जानकर बड़ी ग्लानि हुई और वह क्रोध करके लौटा। एक तो वह स्वभाव (आकृति) से ही भयंकर था और फिर बिना नाक-कानका होनेसे और भी भयानक हो गया। उसे देखते ही वानरोंकी सेनामें भय उत्पन्न हो गया ॥ ५ ॥

दो०—जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ॥ ६६ ॥

'रघुवंशमणिकी जय हो, जय हो, जय हो', ऐसा पुकारकर वानर हूह करके दौड़े और सबने एक ही साथ उसपर पहाड़ और वृक्षोंके समूह छोड़े ॥ ६६ ॥

चौ०—कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई॥ १ ॥

रणके उत्साहमें कुम्भकर्ण विरुद्ध होकर [उनके] सामने ऐसा चला, मानो क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो। वह करोड़-करोड़ वानरोंको एक साथ पकड़-पकड़कर खाने लगा। [वे उसके मुँहमें इस तरह घुसने लगे] मानो पर्वतकी गुफामें टिड्डियाँ समा रही हों ॥ १ ॥

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥
मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा॥ २ ॥

करोड़ों (वानरों) को पकड़कर उसने शरीरसे मसल डाला। करोड़ोंको हाथोंसे मलकर पृथ्वीकी धूलमें मिला दिया। [पेटमें गये हुए] भालू और वानरोंके ठट्ठ-के-ठट्ठ

उसके मुख, नाक और कानोंकी राहसे निकल-निकलकर भाग रहे हैं ॥ २ ॥

रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे ॥ ३ ॥

रणके मदमें मत्त राक्षस कुम्भकर्ण इस प्रकार गर्वित हुआ, मानो विधाताने उसको सारा विश्व अर्पण कर दिया हो, और उसे वह ग्रास कर जायगा। सब योद्धा भाग खड़े हुए, वे लौटाये भी नहीं लौटते। आँखोंसे उन्हें सूझ नहीं पड़ता और पुकारनेसे सुनते नहीं! ॥ ३ ॥

कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥ ४ ॥

कुम्भकर्णने वानर-सेनाको तितर-बितर कर दिया। यह सुनकर राक्षस-सेना भी दौड़ी। श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रुकी नाना प्रकारकी सेना आ गयी है ॥ ४ ॥

दो०—सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन ॥ ६७ ॥

तब कमलनयन श्रीरामजी बोले—हे सुग्रीव! हे विभीषण! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेनाको सँभालना। मैं इस दुष्टके बल और सेनाको देखता हूँ ॥ ६७ ॥

चौ०—कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टँकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा ॥ १ ॥

हाथमें शार्ङ्गधनुष और कमरमें तरकस सजकर श्रीरघुनाथजी शत्रुसेनाको दलन करने चले। प्रभुने पहले तो धनुषका टंकार किया, जिसकी भयानक आवाज सुनते ही शत्रुदल बहरा हो गया ॥ १ ॥

सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा ॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥ २ ॥

फिर सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामजीने एक लाख बाण छोड़े। वे ऐसे चले, मानो पंखवाले काल-सर्प चले हों। जहाँ-तहाँ बहुत-से बाण चले, जिनसे भयंकर राक्षस योद्धा कटने लगे ॥ २ ॥

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥ ३ ॥

उनके चरण, छाती, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं। बहुत-से वीरोंके सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वीपर पड़ रहे हैं। उत्तम योद्धा फिर सँभलकर उठते और लड़ते हैं ॥ ३ ॥

लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं ॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं ॥ ४ ॥

बाण लगते ही वे मेघकी तरह गरजते हैं। बहुत-से तो कठिन बाणको देखकर ही भाग जाते हैं। बिना मुण्ड (सिर) के प्रचण्ड रुण्ड (धड़) दौड़ रहे हैं और 'पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो' का शब्द करते हुए गा (चिल्ला) रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच॥ ६८ ॥

प्रभुके बाणोंने क्षणमात्रमें भयानक राक्षसोंको काटकर रख दिया। फिर वे सब बाण लौटकर श्रीरघुनाथजीके तरकसमें घुस गये ॥ ६८ ॥

चौ०—कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी॥
भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गँभीरा॥ १ ॥

कुम्भकर्णने मनमें विचारकर देखा कि श्रीरामजीने क्षणमात्रमें राक्षसी सेनाका संहार कर डाला। तब वह महाबली वीर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने गम्भीर सिंहनाद किया ॥ १ ॥

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥ २ ॥

वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता है और जहाँ भारी-भारी वानर योद्धा होते हैं, वहाँ डाल देता है। बड़े-बड़े पर्वतोंको आते देखकर प्रभुने उनको बाणोंसे काटकर धूलके समान (चूर-चूर) कर डाला ॥ २ ॥

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक॥
तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं॥ ३ ॥

फिर श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके धनुषको तानकर बहुत-से अत्यन्त भयानक बाण छोड़े। वे बाण कुम्भकर्णके शरीरमें घुसकर [पीछेसे इस प्रकार] निकल जाते हैं [कि उनका पता नहीं चलता], जैसे बिजलियाँ बादलमें समा जाती हैं ॥ ३ ॥

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट कपि आए॥ ४ ॥

उसके काले शरीरसे रुधिर बहता हुआ ऐसी शोभा देता है, मानो काजलके पर्वतसे गेरुके पनाले बह रहे हों। उसे व्याकुल देखकर रीछ-वानर दौड़े। वे ज्यों ही निकट आये, त्यों ही वह हँसा, ॥ ४ ॥

दो०—महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥ ६९ ॥

और बड़ा घोर शब्द करके गरजा तथा करोड़-करोड़ वानरोंको पकड़कर वह गजराजकी तरह उन्हें पृथ्वीपर पटकने लगा और रावणकी दुहाई देने लगा ॥ ६९ ॥

चौ०—भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥ १॥

यह देखकर रीछ-वानरोंके झुंड ऐसे भागे, जैसे भेड़ियेको देखकर भेड़ोंके झुंड! [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! वानर-भालू व्याकुल होकर आर्तवाणीसे पुकारते हुए भाग चले॥ १॥

यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई॥
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥ २॥

[वे कहने लगे—] यह राक्षस दुर्भिक्षके समान है, जो अब वानरकुलरूपी देशमें पड़ना चाहता है। हे कृपारूपी जलके धारण करनेवाले मेघरूप श्रीराम! हे खरके शत्रु! हे शरणागतके दुःख हरनेवाले! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये!॥ २॥

सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥
राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली॥ ३॥

करुणाभरे वचन सुनते ही भगवान् धनुष-बाण सुधारकर चले। महाबलशाली श्रीरामजीने सेनाको अपने पीछे कर लिया और वे [अकेले] क्रोधपूर्वक चले (आगे बढ़े)॥ ३॥

खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥ ४॥

उन्होंने धनुषको खींचकर सौ बाण संधान किये। बाण छूटे और उसके शरीरमें समा गये। बाणोंके लगते ही वह क्रोधमें भरकर दौड़ा। उसके दौड़नेसे पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी॥ ४॥

लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी॥
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥ ५॥

उसने एक पर्वत उखाड़ लिया। रघुकुलतिलक श्रीरामजीने उसकी वह भुजा ही काट दी। तब वह बायें हाथमें पर्वतको लेकर दौड़ा। प्रभुने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथ्वीपर गिरा दी॥ ५॥

काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका॥ ६॥

भुजाओंके कट जानेपर वह दुष्ट कैसी शोभा पाने लगा, जैसे बिना पंखका मन्दराचल पहाड़ हो। उसने उग्र दृष्टिसे प्रभुको देखा, मानो तीनों लोकोंको निगल जाना चाहता हो॥ ६॥

दो०—करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि॥ ७०॥

वह बड़े जोरसे चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाशमें सिद्ध और देवता डरकर हा! हा! हा! इस प्रकार पुकारने लगे ॥ ७० ॥

चौ०—सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो ॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥ १ ॥

करुणानिधान भगवान्‌ने देवताओंको भयभीत जाना। तब उन्होंने धनुषको कानतक तानकर राक्षसके मुखको बाणोंके समूहसे भर दिया तो भी वह महाबली पृथ्वीपर न गिरा ॥ १ ॥

सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल त्रोन सजीव जनु आवा ॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥ २ ॥

मुखमें बाण भरे हुए वह [प्रभुके] सामने दौड़ा। मानो कालरूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो। तब प्रभुने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिरको धड़से अलग कर दिया ॥ २ ॥

सो सिर परेउ दसानन आगें। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥ ३ ॥

वह सिर रावणके आगे जा गिरा। उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ, जैसे मणिके छूट जानेपर सर्प। कुम्भकर्णका प्रचण्ड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी। तब प्रभुने काटकर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३ ॥

परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर ॥
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना ॥ ४ ॥

वानर-भालू और निसाचरोंको अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वीपर ऐसे पड़े जैसे आकाशसे दो पहाड़ गिरे हों। उसका तेज प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके मुखमें समा गया। [यह देखकर] देवता और मुनि सभीने आश्चर्य माना ॥ ४ ॥

सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं ॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए ॥ ५ ॥

देवता नगाड़े बजाते, हर्षित होते और स्तुति करते हुए बहुत-से फूल बरसा रहे हैं। विनती करके सब देवता चले गये। उसी समय देवर्षि नारद आये ॥ ५ ॥

गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए ॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोभत भए ॥ ६ ॥

आकाशके ऊपरसे उन्होंने श्रीहरिके सुन्दर वीररसयुक्त गुणसमूहका गान किया, जो प्रभुके मनको बहुत ही भाया। मुनि यह कहकर चले गये कि अब दुष्ट रावणको शीघ्र मारिये। [उस समय] श्रीरामचन्द्रजी रणभूमिमें आकर [अत्यन्त] सुशोभित हुए ॥ ६ ॥

छं०—संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

अतुलनीय बलवाले कोसलपति श्रीरघुनाथजी रणभूमिमें सुशोभित हैं। मुखपर पसीनेकी बूँदें हैं, कमलके समान नेत्र कुछ लाल हो रहे हैं। शरीरपर रक्तके कण हैं, दोनों हाथोंसे धनुष-बाण फिरा रहे हैं। चारों ओर रीछ-वानर सुशोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभुकी इस छविका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते, जिनके बहुत-से (हजार) मुख हैं।

दो०—निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥ ७१॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे! कुम्भकर्ण, जो नीच राक्षस और पापकी खान था, उसे भी श्रीरामजीने अपना परमधाम दे दिया। अतः वे मनुष्य [निश्चय ही] मन्दबुद्धि हैं, जो उन श्रीरामजीको नहीं भजते॥ ७१॥

चौ०—दिन कें अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी॥
राम कृपाँ कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥ १॥

दिनका अन्त होनेपर दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं। [आजके युद्धमें] योद्धाओंको बड़ी थकावट हुई। परंतु श्रीरामजीकी कृपासे वानरसेनाका बल उसी प्रकार बढ़ गया, जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है॥ १॥

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई॥ २॥

उधर राक्षस दिन-रात इस प्रकार घटते जा रहे हैं, जिस प्रकार अपने ही मुखसे कहनेपर पुण्य घट जाते हैं। रावण बहुत विलाप कर रहा है। बार-बार भाई (कुम्भकर्ण) का सिर कलेजेसे लगाता है॥ २॥

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी॥
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ॥ ३॥

स्त्रियाँ उसके बड़े भारी तेज और बलको बखान करके हाथोंसे छाती पीट-पीटकर रो रही हैं। उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत-सी कथाएँ कहकर पिताको समझाया॥ ३॥

देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई॥
इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ॥ ४॥

[और कहा—] कल मेरा पुरुषार्थ देखियेगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ।

हे तात ! मैंने अपने इष्टदेवसे जो बल और रथ पाया था, वह बल [और रथ] अबतक आपको नहीं दिखलाया था ॥ ४ ॥

एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना ॥
इत कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा ॥ ५ ॥

इस प्रकार डींग मारते हुए सवेरा हो गया। लंकाके चारों दरवाजोंपर बहुत-से वानर आ डटे। इधर कालके समान वीर वानर-भालू हैं और उधर अत्यन्त रणधीर राक्षस ॥ ५ ॥

लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू ॥ ६ ॥

दोनों ओरके योद्धा अपनी-अपनी जयके लिये लड़ रहे हैं। हे गरुड़ ! उनके युद्धका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ६ ॥

दो०—मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ॥ ७२ ॥

मेघनाद उसी (पूर्वोक्त) मायामय रथपर चढ़कर आकाशमें चला गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे वानरोंकी सेनामें भय छा गया ॥ ७२ ॥

चौ०—सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना ॥ १ ॥

वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र, शस्त्र एवं वज्र आदि बहुत-से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघ, पत्थर आदि डालने और बहुत-से बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १ ॥

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना ॥ २ ॥

आकाशमें दसों दिशाओंमें बाण छा गये, मानो मघा नक्षत्रके बादलोंने झड़ी लगा दी हो। 'पकड़ो, पकड़ो, मारो' ये शब्द कानोंसे सुनायी पड़ते हैं। पर जो मार रहा है उसे कोई नहीं जान पाता ॥ २ ॥

गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं ॥
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर ॥ ३ ॥

पर्वत और वृक्षोंको लेकर वानर आकाशमें दौड़कर जाते हैं। पर उसे देख नहीं पाते, इससे दुखी होकर लौट आते हैं—मेघनादने मायाके बलसे अटपटी घाटियों, रास्तों और पर्वत-कन्दराओंको बाणोंके पिंजरे बना दिये (बाणोंसे छा दिया) ॥ ३ ॥

जाहिं कहाँ ब्याकुल भए बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर ॥
मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥ ४ ॥

अब कहाँ जायँ, यह सोचकर (रास्ता न पाकर) वानर व्याकुल हो गये। मानो

पर्वत इन्द्रकी कैदमें पड़े हों। मेघनादने मारुति हनुमान्, अंगद, नल और नील आदि सभी बलवानोंको व्याकुल कर दिया ॥ ४ ॥

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा ॥ ५ ॥

फिर उसने लक्ष्मणजी, सुग्रीव और विभीषणको बाणोंसे मारकर उनके शरीरोंको चलनी कर दिया। फिर वह श्रीरघुनाथजीसे लड़ने लगा। वह जो बाण छोड़ता है, वे साँप होकर लगते हैं ॥ ५ ॥

ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी ॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना ॥ ६ ॥

जो स्वतन्त्र, अनन्त, एक (अखण्ड) और निर्विकार हैं, वे खरके शत्रु श्रीरामजी [लीलासे] नागपाशके वशमें हो गये (उससे बँध गये)। श्रीरामचन्द्रजी सदा स्वतन्त्र, एक (अद्वितीय) भगवान् हैं। वे नटकी तरह अनेकों प्रकारके दिखावटी चरित्र करते हैं ॥ ६ ॥

रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो ॥ ७ ॥

रणकी शोभाके लिये प्रभुने अपनेको नागपाशमें बँधा लिया; किंतु उससे देवताओंको बड़ा भय हुआ ॥ ७ ॥

दो०—गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास ॥ ७३ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे! जिनका नाम जपकर मुनि भव (जन्म-मृत्यु) की फाँसीको काट डालते हैं, वे सर्वव्यापक और विश्वनिवास (विश्वके आधार) प्रभु कहीं बन्धनमें आ सकते हैं ? ॥ ७३ ॥

चौ०—चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥ १ ॥

हे भवानी! श्रीरामजीकी इन सगुण लीलाओंके विषयमें बुद्धि और वाणीके बलसे तर्क (निर्णय) नहीं किया जा सकता। ऐसा विचारकर जो तत्त्वज्ञानी और विरक्त पुरुष हैं, वे सब तर्क (शंका) छोड़कर श्रीरामजीका भजन ही करते हैं ॥ १ ॥

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा ॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा ॥ २ ॥

मेघनादने सेनाको व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हो गया और दुर्वचन कहने लगा। इसपर जाम्बवान्ने कहा—अरे दुष्ट! खड़ा रह। यह सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढ़ा ॥ २ ॥

बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो॥ ३॥

अरे मूर्ख! मैंने बूढ़ा जानकर तुझको छोड़ दिया था। अरे अधम! अब तू मुझीको ललकारने लगा है? ऐसा कहकर उसने चमकता हुआ त्रिशूल चलाया। जाम्बवान् उसी त्रिशूलको हाथसे पकड़कर दौड़ा॥ ३॥

मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥ ४॥

और उसे मेघनादकी छातीपर दे मारा। वह देवताओंका शत्रु चक्कर खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। जाम्बवान्ने फिर क्रोधमें भरकर पैर पकड़कर उसको घुमाया और पृथ्वीपर पटककर उसे अपना बल दिखलाया॥ ४॥

बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥ ५॥

[किंतु] वरदानके प्रतापसे वह मारे नहीं मरता। तब जाम्बवान्ने उसका पैर पकड़कर उसे लंकापर फेंक दिया। इधर देवर्षि नारदजीने गरुड़को भेजा। वे तुरंत ही श्रीरामजीके पास आ पहुँचे॥ ५॥

दो०—खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥ ७४ (क)॥

पक्षिराज गरुड़जी सब माया-सर्पोंके समूहोंको पकड़कर खा गये। तब सब वानरोंके झुंड मायासे रहित होकर हर्षित हुए॥ ७४ (क)॥

गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ॥ ७४ (ख)॥

पर्वत, वृक्ष, पत्थर और नख धारण किये वानर क्रोधित होकर दौड़े। निशाचर विशेष व्याकुल होकर भाग चले और भागकर किलेपर चढ़ गये॥ ७४ (ख)॥

चौ०—मेघनाद कै मुरुछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥ १॥

मेघनादकी मूर्च्छा छूटी, [तब] पिताको देखकर उसे बड़ी शर्म लगी। मैं अजय (अजेय होनेको) यज्ञ करूँ, ऐसा मनमें निश्चय करके वह तुरंत श्रेष्ठ पर्वतकी गुफामें चला गया॥ १॥

इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन॥ २॥

यहाँ विभीषणने यह सलाह विचारी [और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा] हे

अतुलनीय बलवान् उदार प्रभो ! देवताओंको सतानेवाला दुष्ट, मायावी मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है ॥ २ ॥

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि ॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना । बोले अंगदादि कपि नाना ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! यदि वह यज्ञ सिद्ध हो पायेगा, तो हे नाथ ! फिर मेघनाद जल्दी जीता न जा सकेगा । यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने बहुत सुख माना और अंगदादि बहुत-से वानरोंको बुलाया [और कहा—] ॥ ३ ॥

लछिमन संग जाहु सब भाई । करहु बिधंस जग्य कर जाई ॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही । देखि सभय सुर दुख अति मोही ॥ ४ ॥

हे भाइयो ! सब लोग लक्ष्मणके साथ जाओ और जाकर यज्ञको विध्वंस करो । हे लक्ष्मण ! संग्राममें तुम उसे मारना । देवताओंको भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है ॥ ४ ॥

मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई । जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई ॥
जामवंत सुग्रीव बिभीषन । सेन समेत रहेहु तीनिउ जन ॥ ५ ॥

हे भाई ! सुनो, उसको ऐसे बल और बुद्धिके उपायसे मारना, जिससे निशाचरका नाश हो । हे जाम्बवान्, सुग्रीव और विभीषण ! तुम तीनों जने सेनासमेत [इनके] साथ रहना ॥ ५ ॥

जब रघुबीर दीन्हि अनुसासन । कटि निषंग कसि साजि सरासन ॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा । बोले घन इव गिरा गँभीरा ॥ ६ ॥

[इस प्रकार] जब श्रीरघुवीरने आज्ञा दी, तब कमरमें तरकस कसकर और धनुष सजाकर (चढ़ाकर) रणधीर श्रीलक्ष्मणजी प्रभुके प्रतापको हृदयमें धारण करके मेघके समान गम्भीर वाणी बोले— ॥ ६ ॥

जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं । तौ रघुपति सेवक न कहावौं ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई ॥ ७ ॥

यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ, तो श्रीरघुनाथजीका सेवक न कहलाऊँ । यदि सैकड़ों शंकर भी उसकी सहायता करें तो भी श्रीरघुवीरकी दुहाई है; आज मैं उसे मार ही डालूँगा ॥ ७ ॥

दो०—रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत ।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत ॥ ७५ ॥

श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें सिर नवाकर शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी तुरंत चले । उनके साथ अंगद, नील, मयंद, नल और हनुमान् आदि उत्तम योद्धा थे ॥ ७५ ॥

चौ०—जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा । जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा ॥ १ ॥

वानरोंने जाकर देखा कि वह बैठा हुआ खून और भैंसेकी आहुति दे रहा है। वानरोंने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। फिर भी जब वह नहीं उठा, तब वे उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १ ॥

तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई ॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे ॥ २ ॥

इतनेपर भी वह न उठा, [तब] उन्होंने जाकर उसके बाल पकड़े और लातोंसे मार-मारकर वे भाग चले। वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, तब वानर भागे और वहाँ आ गये जहाँ आगे लक्ष्मणजी खड़े थे ॥ २ ॥

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा ॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए ॥ ३ ॥

वह अत्यन्त क्रोधका मारा हुआ आया और बार-बार भयंकर शब्द करके गरजने लगा। मारुति (हनुमान्) और अङ्गद क्रोध करके दौड़े। उसने छातीमें त्रिशूल मारकर दोनोंको धरतीपर गिरा दिया ॥ ३ ॥

प्रभु कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा ॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा ॥ ४ ॥

फिर उसने प्रभु श्रीलक्ष्मणजीपर प्रचण्ड त्रिशूल छोड़ा। अनन्त (श्रीलक्ष्मणजी) ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। हनुमान्‌जी और युवराज अङ्गद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, पर उसे चोट न लगी ॥ ४ ॥

फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा ॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला ॥ ५ ॥

शत्रु (मेघनाद) मारे नहीं मरता, यह देखकर जब वीर लौटे, तब वह घोर चिग्घाड़ करके दौड़ा। उसे क्रुद्ध कालकी तरह आता देखकर लक्ष्मणजीने भयानक बाण छोड़े ॥ ५ ॥

देखेसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ॥ ६ ॥

वज्रके समान बाणोंको आते देखकर वह दुष्ट तुरंत अन्तर्धान हो गया और फिर भाँति-भाँतिके रूप धारण करके युद्ध करने लगा। वह कभी प्रकट होता था और कभी छिप जाता था ॥ ६ ॥

देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा ॥ ७ ॥

शत्रुको पराजित न होता देखकर वानर डरे। तब सर्पराज शेषजी (लक्ष्मणजी) बहुत ही क्रोधित हुए। लक्ष्मणजीने मनमें यह विचार दृढ़ किया कि इस पापीको मैं

बहुत खेला चुका [अब और अधिक खेलाना अच्छा नहीं, अब तो इसे समाप्त ही कर देना चाहिये ।] ॥ ७ ॥

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ॥
छाड़ा बान माझ उर लागा । मरती बार कपटु सब त्यागा ॥ ८ ॥

कोसलपति श्रीरामजीके प्रतापका स्मरण करके लक्ष्मणजीने वीरोचित दर्प करके बाणका संधान किया । बाण छोड़ते ही उसकी छातीके बीचमें लगा । मरते समय उसने सब कपट त्याग दिया ॥ ८ ॥

दो०—रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान ।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान ॥ ७६ ॥

रामके छोटे भाई लक्ष्मण कहाँ हैं ? राम कहाँ हैं ? ऐसा कहकर उसने प्राण छोड़ दिये । अङ्गद और हनुमान् कहने लगे—तेरी माता धन्य है, धन्य है, [जो तू लक्ष्मणजीके हाथों मरा और मरते समय श्रीराम-लक्ष्मणको स्मरण करके तूने उनके नामोंका उच्चारण किया] ॥ ७६ ॥

चौ०—बिनु प्रयास हनुमान उठायो । लंका द्वार राखि पुनि आयो ॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा । चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा ॥ १ ॥

हनुमान्‌जीने उसको बिना ही परिश्रमके उठा लिया और लङ्काके दरवाजेपर रखकर वे लौट आये । उसका मरना सुनकर देवता और गन्धर्व आदि सब विमानोंपर चढ़कर आकाशमें आये ॥ १ ॥

बरषि सुमन दुंदुभीं बजावहिं । श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं ॥
जय अनंत जय जगदाधारा । तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा ॥ २ ॥

वे फूल बरसाकर नगाड़े बजाते हैं और श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश गाते हैं । हे अनन्त ! आपकी जय हो । हे जगदाधार ! आपकी जय हो । हे प्रभो ! आपने सब देवताओंका [महान् विपत्तिसे] उद्धार किया ॥ २ ॥

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए । लछिमन कृपासिंधु पहिं आए ॥
सुत बध सुना दसानन जबहीं । मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं ॥ ३ ॥

देवता और सिद्ध स्तुति करके चले गये, तब लक्ष्मणजी कृपाके समुद्र श्रीरामजीके पास आये । रावणने ज्यों ही पुत्रवधका समाचार सुना, त्यों ही वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३ ॥

मंदोदरी रुदन कर भारी । उर ताड़न बहु भाँति पुकारी ॥
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा । सकल कहहिं दसकंधर पोचा ॥ ४ ॥

मन्दोदरी छाती पीट-पीटकर और बहुत प्रकारसे पुकार-पुकारकर बड़ा भारी विलाप करने लगी । नगरके सब लोग शोकसे व्याकुल हो गये । सभी रावणको नीच कहने लगे ॥ ४ ॥

दो०—तब दसकंठ बिबिध बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि ॥ ७७ ॥

तब रावणने सब स्त्रियोंको अनेकों प्रकारसे समझाया कि समस्त जगत्‌का यह (दृश्य) रूप नाशवान् है, हृदयमें विचारकर देखो ॥ ७७ ॥

चौ०—तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन ॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥ १ ॥

रावणने उनको ज्ञानका उपदेश किया। वह स्वयं तो नीच है, पर उसकी कथा (बातें) शुभ और पवित्र है। दूसरोंको उपदेश देनेमें तो बहुत लोग निपुण होते हैं, पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उपदेशके अनुसार आचरण भी करते हैं ॥ १ ॥

निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा ॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जा कर मन डोला ॥ २ ॥

रात बीत गयी, सबेरा हुआ। रीछ-वानर [फिर] चारों दरवाजोंपर जा डटे। योद्धाओंको बुलाकर दशमुख रावणने कहा—लड़ाईमें शत्रुके सम्मुख जिसका मन डाँवाडोल हो, ॥ २ ॥

सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएँ न भलाई ॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥ ३ ॥

अच्छा है वह अभी भाग जाय। युद्धमें जाकर विमुख होने (भागने) में भलाई नहीं है। मैंने अपनी भुजाओंके बलपर वैर बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया है, उसको मैं [अपने ही] उत्तर दे लूँगा ॥ ३ ॥

अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा ॥
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर उसने पवनके समान तेज चलनेवाला रथ सजाया। सारे जुझाऊ (लड़ाईके) बाजे बजने लगे। सब अतुलनीय बलवान् वीर ऐसे चले मानो काजलकी आँधी चली हो ॥ ४ ॥

असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुज बल गर्ब बिसाला ॥ ५ ॥

उस समय असंख्य अशकुन होने लगे। पर अपनी भुजाओंके बलका बड़ा गर्व होनेसे रावण उन्हें गिनता नहीं है ॥ ५ ॥

छं०—अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते ॥
गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने ॥

अत्यन्त गर्वके कारण वह शकुन-अशकुनका विचार नहीं करता। हथियार हाथोंसे

गिर रहे हैं। योद्धा रथसे गिर पड़ते हैं। घोड़े, हाथी साथ छोड़कर चिग्घाड़ते हुए भाग जाते हैं। स्यार, गीध, कौए और गदहे शब्द कर रहे हैं। बहुत अधिक कुत्ते बोल रहे हैं। उल्लू ऐसे अत्यन्त भयानक शब्द कर रहे हैं, मानो कालके दूत हों (मृत्युका सँदेशा सुना रहे हों)।

दो०—ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥ ७८॥

जो जीवोंके द्रोहमें रत है, मोहके वश हो रहा है, रामविमुख है और कामासक्त है, उसको क्या कभी स्वप्नमें भी सम्पत्ति, शुभ शकुन और चित्तकी शान्ति हो सकती है ?॥७८॥

चौ०—चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
बिबिधि भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥ १॥

राक्षसोंकी अपार सेना चली। चतुरंगिणी सेनाकी बहुत-सी टुकड़ियाँ हैं। अनेकों प्रकारके वाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत-से रंगोंकी अनेकों पताकाएँ और ध्वजाएँ हैं॥ १॥

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥ २॥

मतवाले हाथियोंके बहुत-से झुंड चले। मानो पवनसे प्रेरित हुए वर्षा-ऋतुके बादल हों। रंग-बिरंगे बाना धारण करनेवाले वीरोंके समूह हैं, जो युद्धमें बड़े शूरवीर हैं और बहुत प्रकारकी माया जानते हैं॥ २॥

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥
चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥ ३॥

अत्यन्त विचित्र फौज शोभित है। मानो वीर वसन्तने सेना सजायी हो। सेनाके चलनेसे दिशाओंके हाथी डिगने लगे, समुद्र क्षुभित हो गये और पर्वत डगमगाने लगे॥३॥

उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥ ४॥

इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गये। [फिर सहसा] पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी। ढोल और नगाड़े भीषण ध्वनिसे बज रहे हैं, जैसे प्रलयकालके बादल गरज रहे हों॥ ४॥

भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥ ५॥

भेरी, नफीरी (तुरही) और शहनाईमें योद्धाओंको सुख देनेवाला मारू राग बज रहा है। सब वीर सिंहनाद करते हैं और अपने-अपने बल-पौरुषका बखान कर रहे हैं॥५॥

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥ ६॥

रावणने कहा—हे उत्तम योद्धाओ ! सुनो, तुम रीछ-वानरोंके ठट्टको मसल डालो। और मैं दोनों राजकुमार भाइयोंको मारूँगा। ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चलायी ॥ ६ ॥

यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर दोहाई ॥ ७ ॥

जब सब वानरोंने यह खबर पायी, तब वे श्रीरघुवीरकी दुहाई देते हुए दौड़े ॥७॥

छं०—धाए बिसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजसु बखानहीं॥

वे विशाल और कालके समान कराल वानर-भालू दौड़े। मानो पंखवाले पर्वतोंके समूह उड़ रहे हों। वे अनेक वर्णोंके हैं। नख, दाँत, पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके हथियार हैं। वे बड़े बलवान् हैं और किसीका भी डर नहीं मानते। रावणरूपी मतवाले हाथीके लिये सिंहरूप श्रीरामजीका जय-जयकार करके वे उनके सुन्दर यशका बखान करते हैं।

दो०—दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि ॥ ७९ ॥

दोनों ओरके योद्धा जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जान (चुन) कर इधर श्रीरघुनाथजीका और उधर रावणका बखान करके परस्पर भिड़ गये ॥ ७९ ॥

चौ०—रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥ १ ॥

रावणको रथपर और श्रीरघुवीरको बिना रथके देखकर विभीषण अधीर हो गये। प्रेम अधिक होनेसे उनके मनमें संदेह हो गया [कि वे बिना रथके रावणको कैसे जीत सकेंगे]। श्रीरामजीके चरणोंकी वन्दना करके वे स्नेहपूर्वक कहने लगे ॥ १ ॥

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना ॥ २ ॥

हे नाथ ! आपके न रथ है, न तनकी रक्षा करनेवाला कवच है और न जूते ही हैं। वह बलवान् वीर रावण किस प्रकार जीता जायगा ? कृपानिधान श्रीरामजीने कहा— हे सखे ! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है ॥ २ ॥

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥ ३ ॥

शौर्य और धैर्य उस रथके पहिये हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इन्द्रियोंका वशमें होना) और

परोपकार—ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरीसे रथमें जोड़े हुए हैं ॥ ३ ॥

ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥ ४ ॥

ईश्वरका भजन ही [उस रथको चलानेवाला] चतुर सारथि है । वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है । दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है ॥ ४ ॥

अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥ ५ ॥

निर्मल (पापरहित) और अचल (स्थिर) मन तरकसके समान है । शम (मनका वशमें होना), [अहिंसादि] यम और [शौचादि] नियम—ये बहुत-से बाण हैं । ब्राह्मणों और गुरुका पूजन अभेद्य कवच है । इसके समान विजयका दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५ ॥

सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥ ६ ॥

हे सखे ! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिये जीतनेको कहीं शत्रु ही नहीं है ॥ ६ ॥

दो०—महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर ।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥ ८० (क) ॥

हे धीरबुद्धिवाले सखा ! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान् दुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है [रावणकी तो बात ही क्या है] ॥ ८० (क) ॥

सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज ।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज ॥ ८० (ख) ॥

प्रभुके वचन सुनकर विभीषणजीने हर्षित होकर उनके चरणकमल पकड़ लिये [और कहा—] हे कृपा और सुखके समूह श्रीरामजी ! आपने इसी बहाने मुझे [महान्] उपदेश दिया ॥ ८० (ख) ॥

उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान ।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन ॥ ८० (ग) ॥

उधरसे रावण ललकार रहा है और इधरसे अंगद और हनुमान् । राक्षस और रीछ-वानर अपने-अपने स्वामीकी दुहाई देकर लड़ रहे हैं ॥ ८० (ग) ॥

चौ०—सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना । देखत रन नभ चढ़े बिमाना ॥
हमहू उमा रहे तेहिं संगा । देखत राम चरित रन रंगा ॥ १ ॥

ब्रह्मा आदि देवता और अनेकों सिद्ध तथा मुनि विमानोंपर चढ़े हुए आकाशसे युद्ध देख रहे हैं। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा! मैं भी उस समाजमें था और श्रीरामजीके रण-रंग (रणोत्साह) की लीला देख रहा था ॥ १ ॥

सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते ॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ॥ २ ॥

दोनों ओरके योद्धा रण-रसमें मतवाले हो रहे हैं। वानरोंको श्रीरामजीका बल है, इससे वे जयशील हैं (जीत रहे हैं)। एक दूसरेसे भिड़ते और ललकारते हैं और एक दूसरेको मसल-मसलकर पृथ्वीपर डाल देते हैं ॥ २ ॥

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं ॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं ॥ ३ ॥

वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ देते हैं और सिर तोड़कर उन्हीं सिरोंसे दूसरोंको मारते हैं। पेट फाड़ते हैं, भुजाएँ उखाड़ते हैं और योद्धाओंको पैर पकड़कर पृथ्वीपर पटक देते हैं ॥ ३ ॥

निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू ॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे ॥ ४ ॥

राक्षस योद्धाओंको भालू पृथ्वीमें गाड़ देते हैं और ऊपरसे बहुत-सी बालू डाल देते हैं। युद्धमें शत्रुओंसे विरुद्ध हुए वीर वानर ऐसे दिखायी पड़ते हैं मानो बहुत-से क्रोधित काल हों ॥ ४ ॥

छं०—क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं ॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजहीं ॥ १ ॥

क्रोधित हुए कालके समान वे वानर खून बहते हुए शरीरोंसे शोभित हो रहे हैं। वे बलवान् वीर राक्षसोंकी सेनाके योद्धाओंको मसलते और मेघकी तरह गरजते हैं। डाँटकर चपेटोंसे मारते, दाँतोंसे काटकर लातोंसे पीस डालते हैं। वानर-भालू चिग्घाड़ते और ऐसा छल-बल करते हैं जिससे दुष्ट राक्षस नष्ट हो जायँ ॥ १ ॥

धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं ॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही ॥ २ ॥

वे राक्षसोंके गाल पकड़कर फाड़ डालते हैं, छाती चीर डालते हैं और उनकी अँतड़ियाँ निकालकर गलेमें डाल लेते हैं। वे वानर ऐसे देख पड़ते हैं मानो प्रह्लादके

स्वामी श्रीनृसिंह भगवान् अनेकों शरीर धारण करके युद्धके मैदानमें क्रीड़ा कर रहे हों। पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो आदि घोर शब्द आकाश और पृथ्वीमें भर (छा) गये हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जो सचमुच तृणसे वज्र और वज्रसे तृण कर देते हैं। (निर्बलको सबल और सबलको निर्बल कर देते हैं) ॥ २ ॥

दो०—निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप ॥ ८१ ॥

अपनी सेनाको विचलित होते हुए देखा, तब बीस भुजाओंमें दस धनुष लेकर रावण रथपर चढ़कर गर्व करके 'लौटो, लौटो' कहता हुआ चला ॥ ८१ ॥

चौ०—धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर ॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि ता पर एकहिं बारा ॥ १ ॥

रावण अत्यन्त क्रोधित होकर दौड़ा। वानर हुंकार करते हुए [लड़नेके लिये] उसके सामने चले। उन्होंने हाथोंमें वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर रावणपर एक ही साथ डाले ॥ १ ॥

लागहिं सैल बज्र तन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू ॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी ॥ २ ॥

पर्वत उसके वज्रतुल्य शरीरमें लगते ही तुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर फूट जाते हैं। अत्यन्त क्रोधी रणोन्मत्त रावण रथ रोककर अचल खड़ा रहा, [अपने स्थानसे] जरा भी नहीं हिला ॥ २ ॥

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा ॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ॥ ३ ॥

उसे बहुत ही क्रोध हुआ। वह इधर-उधर झपटकर और डपटकर वानर योद्धाओंको मसलने लगा। अनेकों वानर-भालू 'हे अंगद ! हे हनुमान् ! रक्षा करो, रक्षा करो' [पुकारते हुए] भाग चले ॥ ३ ॥

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं ॥
तेहिं देखे कपि सकल पराने। दसहुँ चाप सायक संधाने ॥ ४ ॥

हे रघुवीर ! हे गोसाईं ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। यह दुष्ट कालकी भाँति हमें खा रहा है। उसने देखा कि सब वानर भाग छूटे। तब [रावणने] दसों धनुषोंपर बाण सन्धान किये ॥ ४ ॥

छं०—संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं ॥
भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रच्छक हरे ॥

उसने धनुषपर सन्धान करके बाणोंके समूह छोड़े। वे बाण सर्पकी तरह उड़कर जा लगते थे। पृथ्वी, आकाश और दिशा-विदिशा सर्वत्र बाण भर रहे हैं। वानर भागें तो कहाँ? अत्यन्त कोलाहल मच गया। वानर-भालुओंकी सेना व्याकुल होकर आर्त्त-पुकार करने लगी—हे रघुवीर! हे करुणासागर! हे पीड़ितोंके बन्धु! हे सेवकोंकी रक्षा करके उनके दुःख हरनेवाले हरि!

दो०—निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥ ८२॥

अपनी सेनाको व्याकुल देखकर कमरमें तरकस कसकर और हाथमें धनुष लेकर श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर मस्तक नवाकर लक्ष्मणजी क्रोधित होकर चले॥ ८२॥

चौ०—रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥ १॥

[लक्ष्मणजीने पास जाकर कहा—] अरे दुष्ट! वानर-भालुओंको क्या मार रहा है? मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ? [रावणने कहा—] अरे मेरे पुत्रके घातक! मैं तुझीको ढूँढ़ रहा था। आज तुझे मारकर [अपनी] छाती ठंडी करूँगा॥ १॥

अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥ २॥

ऐसा कहकर उसने प्रचण्ड बाण छोड़े। लक्ष्मणजीने सबके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। रावणने करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाये। लक्ष्मणजीने उनको तिलके बराबर करके काटकर हटा दिया॥ २॥

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥ ३॥

फिर अपने बाणोंसे [उसपर] प्रहार किया और [उसके] रथको तोड़कर सारथिको मार डाला। [रावणके] दसों मस्तकोंमें सौ-सौ बाण मारे। वे सिरोंमें ऐसे पैठ गये, मानो पहाड़के शिखरोंमें सर्प प्रवेश कर रहे हों॥ ३॥

पुनि सत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छाड़िसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥ ४॥

फिर सौ बाण उसकी छातीमें मारे। वह पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसे कुछ भी होश न रहा। फिर मूर्च्छा छूटनेपर वह प्रबल रावण उठा और उसने वह शक्ति चलायी जो ब्रह्माजीने उसे दी थी॥ ४॥

छं०—सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‌यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥

ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी ।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी ॥

वह ब्रह्माकी दी हुई प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मणजीके ठीक छातीमें लगी । वीर लक्ष्मणजी व्याकुल होकर गिर पड़े । तब रावण उन्हें उठाने लगा, पर उसके अतुलित बलकी महिमा यों ही रह गयी, (व्यर्थ हो गयी, वह उन्हें उठा न सका) । जिनके एक ही सिरपर ब्रह्माण्डरूपी भवन धूलके एक कणके समान विराजता है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है । वह तीनों भुवनोंके स्वामी लक्ष्मणजीको नहीं जानता ।

दो०—**देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर ।**
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥ ८३ ॥

यह देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े । हनुमान्‌जीके आते ही रावणने उनपर अत्यन्त भयंकर घूँसेका प्रहार किया ॥ ८३ ॥

चौ०—जानु टेकि कपि भूमि न गिरा । उठा सँभारि बहुत रिस भरा ॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥ १ ॥

हनुमान्‌जी घुटने टेककर रह गये, पृथ्वीपर गिरे नहीं और फिर क्रोधसे भरे हुए सँभालकर उठे । हनुमान्‌जीने रावणको एक घूँसा मारा । वह ऐसा गिर पड़ा, जैसे वज्रकी मारसे पर्वत गिरा हो ॥ १ ॥

मुरुछा गै बहोरि सो जागा । कपि बल बिपुल सराहन लागा ॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही । जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही ॥ २ ॥

मूर्च्छा भंग होनेपर फिर वह जगा और हनुमान्‌जीके बड़े भारी बलको सराहने लगा । [हनुमान्‌जीने कहा—] मेरे पौरुषको धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे देवद्रोही ! तू अब भी जीता रह गया ॥ २ ॥

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो । देखि दसानन बिसमय पायो ॥
कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता । तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर और लक्ष्मणजीको उठाकर हनुमान्‌जी श्रीरघुनाथजीके पास ले आये । यह देखकर रावणको आश्चर्य हुआ । श्रीरघुवीरने [लक्ष्मणजीसे] कहा—हे भाई ! हृदयमें समझो, तुम कालके भी भक्षक और देवताओंके रक्षक हो ॥ ३ ॥

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला । गई गगन सो सकति कराला ॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए । रिपु सन्मुख अति आतुर आए ॥ ४ ॥

ये वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे । वह कराल शक्ति आकाशको चली गयी । लक्ष्मणजी फिर धनुष-बाण लेकर दौड़े और बड़ी शीघ्रतासे शत्रुके सामने आ पहुँचे ॥ ४ ॥

छं०—**आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो ।**
गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो ॥

सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो ॥

फिर उन्होंने बड़ी ही शीघ्रतासे रावणके रथको चूर-चूर कर और सारथिको मारकर उसे (रावणको) व्याकुल कर दिया। सौ बाणोंसे उसका हृदय बेध दिया, जिससे रावण अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब दूसरा सारथि उसे रथमें डालकर तुरंत ही लङ्काको ले गया। प्रतापके समूह श्रीरघुवीरके भाई लक्ष्मणजीने फिर आकर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया।

दो०—उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य ॥ ८४ ॥

वहाँ (लङ्कामें) रावण मूर्च्छासे जागकर कुछ यज्ञ करने लगा। वह मूर्ख और अत्यन्त अज्ञानी हठवश श्रीरघुनाथजीसे विरोध करके विजय चाहता है ॥ ८४ ॥

चौ०—इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा ॥ १ ॥

यहाँ विभीषणजीने सब खबर पायी और तुरंत जाकर श्रीरघुनाथजीको कह सुनायी कि हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होनेपर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा ॥ १ ॥

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर ॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए ॥ २ ॥

हे नाथ! तुरंत वानर योद्धाओंको भेजिये; जो यज्ञका विध्वंस करें, जिससे रावण युद्धमें आवे। प्रातःकाल होते ही प्रभुने वीर योद्धाओंको भेजा। हनुमान् और अंगद आदि सब [प्रधान वीर] दौड़े ॥ २ ॥

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका ॥
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा ॥ ३ ॥

वानर खेलते ही कूदकर लङ्कापर जा चढ़े और निर्भय रावणके महलमें जा घुसे। ज्यों ही उसको यज्ञ करते देखा, त्यों ही सब वानरोंको बहुत क्रोध हुआ ॥ ३ ॥

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा ॥
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता ॥ ४ ॥

[उन्होंने कहा—] अरे ओ निर्लज्ज! रणभूमिसे घर भाग आया और यहाँ आकर बगुलेका-सा ध्यान लगाकर बैठा है? ऐसा कहकर अंगदने लात मारी, पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस दुष्टका मन स्वार्थमें अनुरक्त था ॥ ४ ॥

छं०—नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं ॥

तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

जब उसने नहीं देखा, तब वानर क्रोध करके उसे दाँतोंसे पकड़कर [काटने और] लातोंसे मारने लगे। स्त्रियोंको बाल पकड़कर घरसे बाहर घसीट लाये, वे अत्यन्त ही दीन होकर पुकारने लगीं। तब रावण कालके समान क्रोधित होकर उठा और वानरोंको पैर पकड़कर पटकने लगा। इसी बीचमें वानरोंने यज्ञ विध्वंस कर डाला, यह देखकर वह मनमें हारने लगा (निराश होने लगा)।

दो०—जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥ ८५॥

यज्ञ विध्वंस करके सब चतुर वानर रघुनाथजीके पास आ गये। तब रावण जीनेकी आशा छोड़कर क्रोधित होकर चला॥ ८५॥

चौ०—चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥ १॥

चलते समय अत्यन्त भयंकर अमङ्गल (अपशकुन) होने लगे। गीध उड़-उड़कर उसके सिरोंपर बैठने लगे। किंतु वह कालके वश था, इससे किसी भी अपशकुनको नहीं मानता था। उसने कहा—युद्धका डंका बजाओ॥ १॥

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें॥ २॥

निशाचरोंकी अपार सेना चली। उसमें बहुत-से हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल हैं। वे दुष्ट प्रभुके सामने कैसे दौड़े, जैसे पतंगोंके समूह अग्निकी ओर [जलनेके लिये] दौड़ते हैं॥ २॥

इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहिं दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥ ३॥

इधर देवताओंने स्तुति की कि हे श्रीरामजी! इसने हमको दारुण दुःख दिये हैं। अब आप इसे [अधिक] न खेलाइये, जानकीजी बहुत ही दुखी हो रही हैं॥ ३॥

देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा जूट दृढ़ बाँधें माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे॥ ४॥

देवताओंके वचन सुनकर प्रभु मुसकराये। फिर श्रीरघुवीरने उठकर बाण सुधारे। मस्तकपर जटाओंके जूड़ेको कसकर बाँधे हुए हैं, उसके बीच-बीचमें पुष्प गूँथे हुए शोभित हो रहे हैं॥ ४॥

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥
कटि तट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥ ५॥

लाल नेत्र और मेघके समान श्याम शरीरवाले और सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हैं। प्रभुने कमरमें फेंटा तथा तरकस कस लिया और हाथमें कठोर शार्ङ्गधनुष ले लिया ॥ ५ ॥

छं०—सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

प्रभुने हाथमें शार्ङ्गधनुष लेकर कमरमें बाणोंकी खान (अक्षय) सुन्दर तरकस कस लिया। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं और मनोहर चौड़ी छातीपर ब्राह्मण (भृगुजी) के चरणका चिह्न शोभित है। तुलसीदासजी कहते हैं, ज्यों ही प्रभु धनुष-बाण हाथमें लेकर फिराने लगे, त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिशाओंके हाथी, कच्छप, शेषजी, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे।

दो०—सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥ ८९॥

[भगवान्‌की] शोभा देखकर देवता हर्षित होकर फूलोंकी अपार वर्षा करने लगे। और शोभा, शक्ति और गुणोंके धाम करुणानिधान प्रभुकी जय हो, जय हो, जय हो [ऐसा पुकारने लगे] ॥ ८९ ॥

चौ०—एहीं बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा॥ १॥

इसी बीचमें निशाचरोंकी अत्यन्त घनी सेना कसमसाती हुई (आपसमें टकराती हुई) आयी। उसे देखकर वानर योद्धा इस प्रकार [उसके] सामने चले, जैसे प्रलयकालके बादलोंके समूह हों ॥ १ ॥

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहँ दिसि दामिनीं दमंकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥ २॥

बहुत-से कृपाण और तलवारें चमक रही हैं, मानो दसों दिशाओंमें बिजलियाँ चमक रही हों। हाथी, रथ और घोड़ोंका कठोर चिग्घाड़ ऐसा लगता है, मानो बादल भयंकर गर्जन कर रहे हों ॥ २ ॥

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भै बृष्टि अपारा॥ ३॥

वानरोंकी बहुत-सी पूँछें आकाशमें छायी हुई हैं। [वे ऐसी शोभा दे रही हैं] मानो सुन्दर इन्द्रधनुष उदय हुए हों। धूल ऐसी उठ रही है, मानो जलकी धारा हो।

बाणरूपी बूँदोंकी अपार वृष्टि हुई ॥ ३ ॥

दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा ॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई ॥ ४ ॥

दोनों ओरसे योद्धा पर्वतोंका प्रहार करते हैं। मानो बारंबार वज्रपात हो रहा हो। श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके बाणोंकी झड़ी लगा दी, [जिससे] राक्षसोंकी सेना घायल हो गयी ॥ ४ ॥

लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं ॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी ॥ ५ ॥

बाण लगते ही वीर चीत्कार कर उठते हैं और चक्कर खा-खाकर जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं। उनके शरीरोंसे ऐसे खून बह रहा है, मानो पर्वतके भारी झरनोंसे जल बह रहा हो। इस प्रकार डरपोकोंको भय उत्पन्न करनेवाली रुधिरकी नदी बह चली ॥५॥

छं०—कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी ॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने ॥

डरपोकोंको भय उपजानेवाली अत्यन्त अपवित्र रक्तकी नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे हैं। रथ रेत है और पहिये भँवर हैं। वह नदी बहुत भयावनी बह रही है। हाथी, पैदल, घोड़े, गदहे तथा अनेकों सवारियाँ ही, जिनकी गिनती कौन करे, नदीके जलजन्तु हैं। बाण, शक्ति और तोमर सर्प हैं, धनुष तरङ्गें हैं और ढाल बहुत-से कछुवे हैं।

दो०—बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन ॥ ८७ ॥

वीर पृथ्वीपर इस तरह गिर रहे हैं, मानो नदी-किनारेके वृक्ष ढह रहे हों। बहुत-सी मज्जा बह रही है, वही फेन है। डरपोक जहाँ इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम योद्धाओंके मनमें सुख होता है ॥ ८७ ॥

चौ०—मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला ॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं ॥ १ ॥

भूत, पिशाच और वैताल, बड़े-बड़े झोंटोंवाले महान् भयंकर झोटिंग और प्रमथ (शिवगण) उस नदीमें स्नान करते हैं। कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक दूसरेसे छीनकर खा जाते हैं ॥ १ ॥

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥
कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे ॥ २ ॥

एक (कोई) कहते हैं, अरे मूर्खो ! ऐसी सस्ती (बहुतायत) है; फिर भी तुम्हारी दरिद्रता नहीं जाती ! घायल योद्धा तटपर पड़े कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्धजल (वे व्यक्ति जो मरनेके समय आधे जलमें रक्खे जाते हैं) पड़े हों ॥ २ ॥

खैंचहिं गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए ॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं ॥ ३ ॥

गीध आँतें खींच रहे हैं, मानो मछलीमार नदी-तटपरसे चित्त लगाये हुए (ध्यानस्थ होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसीसे मछली पकड़ रहे हों)। बहुत-से योद्धा बहे जा रहे हैं और पक्षी उनपर चढ़े चले जा रहे हैं, मानो वे नदीमें नावरि (नौकाक्रीडा) खेल रहे हों ॥ ३ ॥

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं ॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं ॥ ४ ॥

योगिनियाँ खप्परोंमें भर-भरकर खून जमा कर रही हैं। भूत-पिशाचोंकी स्त्रियाँ आकाशमें नाच रही हैं। चामुण्डाएँ योद्धाओंकी खोपड़ियोंका करताल बजा रही हैं और नाना प्रकारसे गा रही हैं ॥ ४ ॥

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥ ५ ॥

गीदड़ोंके समूह कट-कट शब्द करते हुए मुर्दोंको काटते, खाते, हुआँ-हुआँ करते और पेट भर जानेपर एक-दूसरेको डाँटते हैं। करोड़ों धड़ बिना सिरके घूम रहे हैं और सिर पृथ्वीपर पड़े जय-जय बोल रहे हैं ॥ ५ ॥

छं०—बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए ॥

मुण्ड (कटे सिर) जय-जय बोलते हैं और प्रचण्ड रुण्ड (धड़) बिना सिरके दौड़ते हैं। पक्षी खोपड़ियोंमें उलझ-उलझकर परस्पर लड़े मरते हैं; उत्तम योद्धा दूसरे योद्धाओंको ढहा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीके बलसे दर्पित हुए वानर राक्षसोंके झुंडोंको मसले डालते हैं। श्रीरामजीके बाणसमूहोंसे मरे हुए योद्धा लड़ाईके मैदानमें सो रहे हैं।

दो०—रावन हृदयँ बिचारा भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार ॥ ८८ ॥

रावणने हृदयमें विचारा कि राक्षसोंका नाश हो गया है। मैं अकेला हूँ और वानर-भालू बहुत हैं, इसलिये मैं अब अपार माया रचूँ ॥ ८८ ॥

चौ०—देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥ १ ॥

देवताओंने प्रभुको पैदल (बिना सवारीके युद्ध करते) देखा, तो उनके हृदयमें बड़ा भारी क्षोभ (दुःख) उत्पन्न हुआ। [फिर क्या था] इन्द्रने तुरंत अपना रथ भेज दिया। [उसका सारथि] मातलि हर्षके साथ उसे ले आया॥ १ ॥

तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी॥ २ ॥

उस दिव्य, अनुपम और तेजके पुञ्ज (तेजोमय) रथपर कोसलपुरीके राजा श्रीरामचन्द्रजी हर्षित होकर चढ़े। उसमें चार चञ्चल, मनोहर, अजर, अमर और मनकी गतिके समान शीघ्र चलनेवाले (देवलोकके) घोड़े जुते थे॥ २ ॥

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीको रथपर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े। वानरोंकी मार सही नहीं जाती। तब रावणने माया फैलायी॥ ३ ॥

सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी॥ ४ ॥

एक श्रीरघुवीरके ही वह माया नहीं लगी। सब वानरोंने और लक्ष्मणजीने भी उस मायाको सच मान लिया। वानरोंने राक्षसी सेनामें भाई लक्ष्मणजीसहित बहुत-से रामोंको देखा॥ ४ ॥

छं०—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसल धनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥

बहुत-से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मनमें मिथ्या डरसे बहुत ही डर गये। लक्ष्मणजीसहित वे मानो चित्रलिखे-से जहाँ-के-तहाँ खड़े देखने लगे। अपनी सेनाको आश्चर्यचकित देखकर कोसलपति भगवान् हरि (दुःखोंके हरनेवाले श्रीरामजी) ने हँसकर धनुषपर बाण चढ़ाकर, पलभरमें सारी माया हर ली। वानरोंकी सारी सेना हर्षित हो गयी।

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥ ८९॥

फिर श्रीरामजी सबकी ओर देखकर गम्भीर वचन बोले—हे वीरो! तुम सब बहुत ही थक गये हो, इसलिये अब [मेरा और रावणका] द्वन्द्व युद्ध देखो॥ ८९॥

चौ०—अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा॥ १॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने ब्राह्मणोंके चरण-कमलोंमें सिर नवाया और फिर रथ चलाया। तब रावणके हृदयमें क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा॥ १॥

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥ २॥

[उसने कहा—] अरे तपस्वी! सुनो, तुमने युद्धमें जिन योद्धाओंको जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरा यश सारा जगत् जानता है, लोकपालतक जिसके कैदखानेमें पड़े हैं॥ २॥

खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥ ३॥

तुमने खर, दूषण और विराधको मारा। बेचारे बालिका व्याधकी तरह वध किया। बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओंके समूहका संहार किया और कुम्भकर्ण तथा मेघनादको भी मारा॥ ३॥

आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥
आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥ ४॥

अरे राजा! यदि तुम रणसे भाग न गये तो आज मैं [वह] सारा वैर निकाल लूँगा। आज मैं तुम्हें निश्चय ही कालके हवाले कर दूँगा। तुम कठिन रावणके पाले पड़े हो॥ ४॥

सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥ ५॥

रावणके दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान श्रीरामजीने हँसकर यह वचन कहा—तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ॥ ५॥

छं०—जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

व्यर्थ बकवाद करके अपने सुन्दर यशका नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो। संसारमें तीन प्रकारके पुरुष होते हैं—पाटल (गुलाब), आम और कटहलके समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल

दोनों देते हैं और एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार [पुरुषोंमें] एक कहते हैं [करते नहीं], दूसरे कहते और करते भी हैं और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणीसे कहते नहीं।

दो०—राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥ ९०॥

श्रीरामजीके वचन सुनकर वह खूब हँसा [और बोला—] मुझे ज्ञान सिखाते हो! उस समय वैर करते तो नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं॥ ९०॥

चौ०—कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥ १॥

दुर्वचन कहकर रावण क्रुद्ध होकर वज्रके समान बाण छोड़ने लगा। अनेकों आकार-के बाण दौड़े और दिशा, विदिशा तथा आकाश और पृथ्वीमें सब जगह छा गये॥ १॥

पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥
छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई॥ २॥

श्रीरघुवीरने अग्निबाण छोड़ा, [जिससे] रावणके सब बाण क्षणभरमें भस्म हो गये। तब उसने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी। [किंतु] श्रीरामचन्द्रजीने उसको बाणके साथ वापस भेज दिया॥ २॥

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै॥
निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसें॥ ३॥

वह करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, परंतु प्रभु उन्हें बिना ही परिश्रम काटकर हटा देते हैं। रावणके बाण किस प्रकार निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्यके सब मनोरथ!॥ ३॥

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥ ४॥

तब उसने श्रीरामजीके सारथिको सौ बाण मारे। वह श्रीरामजीकी जय पुकार-कर पृथ्वीपर गिर पड़ा। श्रीरामजीने कृपा करके सारथिको उठाया। तब प्रभु अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुए॥ ४॥

छं०—भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

युद्धमें शत्रुके विरुद्ध श्रीरघुनाथजी क्रोधित हुए, तब तरकसमें बाण कसमसाने लगे (बाहर निकलनेको आतुर होने लगे)। उनके धनुषका अत्यन्त प्रचण्ड शब्द

(टङ्कार) सुनकर मनुष्यभक्षी सब राक्षस वातग्रस्त हो गये (अत्यन्त भयभीत हो गये) । मन्दोदरीका हृदय काँप उठा । समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत डर गये । दिशाओंके हाथी पृथ्वीको दाँतोंसे पकड़कर चिग्घाड़ने लगे । यह कौतुक देखकर देवता हँसे ।

दो०—तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल ।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल ॥ ९१ ॥

धनुषको कानतक तानकर श्रीरामचन्द्रजीने भयानक बाण छोड़े । श्रीरामजीके बाणसमूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते (लहराते) हुए जा रहे हों ॥ ९१ ॥

चौ०—चले बान सपच्छ जनु उरगा । प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा ॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका । गर्जा अति अंतर बल थाका ॥ १ ॥

बाण ऐसे चले मानो पंखवाले सर्प उड़ रहे हों । उन्होंने पहले सारथि और घोड़ोंको मार डाला । फिर रथको चूर-चूर करके ध्वजा और पताकाओंको गिरा दिया । तब रावण बड़े जोरसे गरजा, पर भीतरसे उसका बल थक गया था ॥ १ ॥

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना । अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना ॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके । जिमि परद्रोह निरत मनसा के ॥ २ ॥

तुरंत दूसरे रथपर चढ़कर खिसियाकर उसने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोड़े । उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो रहे हैं, जैसे परद्रोहमें लगे हुए चित्तवाले मनुष्यके होते हैं ॥ २ ॥

तब रावन दस सूल चलावा । बाजि चारि महि मारि गिरावा ॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक । खैंचि सरासन छाँड़े सायक ॥ ३ ॥

तब रावणने दस त्रिशूल चलाये और श्रीरामजीके चारों घोड़ोंको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया । घोड़ोंको उठाकर श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े ॥ ३ ॥

रावन सिर सरोज बनचारी । चलि रघुबीर सिलीमुख धारी ॥
दस दस बान भाल दस मारे । निसरि गए चले रुधिर पनारे ॥ ४ ॥

रावणके सिररूपी कमलवनमें विचरण करनेवाले श्रीरघुवीरके बाणरूपी भ्रमरोंकी पंक्ति चली । श्रीरामचन्द्रजीने उसके दसों सिरोंमें दस-दस बाण मारे, जो आर-पार हो गये और सिरोंसे रक्तके पनाले बह चले ॥ ४ ॥

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना । प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना ॥
तीस तीर रघुबीर पबारे । भुजन्हि समेत सीस महि पारे ॥ ५ ॥

रुधिर बहते हुए ही बलवान् रावण दौड़ा । प्रभुने फिर धनुषपर बाण सन्धान किया । श्रीरघुवीरने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओंसमेत दसों सिर काटकर पृथ्वीपर गिरा दिये ॥ ५ ॥

काटतहीं पुनि भए नबीने । राम बहोरि भुजा सिर छीने ॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए । कटत झटिति पुनि नूतन भए ॥ ६ ॥

[सिर और हाथ—] काटते ही फिर नये हो गये। श्रीरामजीने फिर भुजाओं और सिरोंको काट गिराया। इस तरह प्रभुने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे। परंतु काटते ही वे तुरंत फिर नये हो गये ॥ ६ ॥

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा ॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू ॥ ७ ॥

प्रभु बार-बार उसकी भुजा और सिरोंको काट रहे हैं; क्योंकि कोसलपति श्रीरामजी बड़े कौतुकी हैं। आकाशमें सिर और बाहु ऐसे छा गये हैं, मानो असंख्य केतु और राहु हों ॥ ७ ॥

छं०—जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं ॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं ॥

मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाशमार्गसे दौड़ रहे हों। श्रीरघुवीरके प्रचण्ड बाणोंके [बार-बार] लगनेसे वे पृथ्वीपर गिरने नहीं पाते। एक-एक बाणसे समूह-के-समूह सिर छिदे हुए आकाशमें उड़ते ऐसे शोभा दे रहे हैं, मानो सूर्यकी किरणें क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओंको पिरो रही हों।

दो०—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार ॥ ९२ ॥

जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरोंको काटते हैं, वैसे-ही-वैसे वे अपार होते जाते हैं। जैसे विषयोंका सेवन करनेसे काम (उन्हें भोगनेकी इच्छा) दिन-प्रति-दिन नया-नया बढ़ता जाता है ॥ ९२ ॥

चौ०—दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी ॥ १ ॥

सिरोंकी बाढ़ देखकर रावणको अपना मरण भूल गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ। वह महान् अभिमानी मूर्ख गरजा और दसों धनुषोंको तानकर दौड़ा ॥ १ ॥

समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो ॥
दंड एक रथ देखि न परेऊ। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ ॥ २ ॥

रणभूमिमें रावणने क्रोध किया और बाण बरसाकर श्रीरघुनाथजीके रथको ढक दिया। एक दण्ड (घड़ी) तक रथ दिखलायी न पड़ा, मानो कुहरेमें सूर्य छिप गया हो ॥२॥

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा ॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ॥ ३ ॥

जब देवताओंने हाहाकार किया, तब प्रभुने क्रोध करके धनुष उठाया और

शत्रुके बाणोंको हटाकर उन्होंने शत्रुके सिर काटे और उनसे दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सबको पाट दिया ॥ ३ ॥

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ॥
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ॥ ४ ॥

काटे हुए सिर आकाशमार्गसे दौड़ते हैं और जय-जयकी ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं। 'लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं ? कोसलपति रघुवीर कहाँ हैं ?' ॥ ४ ॥

छं०—कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले ॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं ॥

'राम कहाँ हैं ?' यह कहकर सिरोंके समूह दौड़े, उन्हें देखकर वानर भाग चले। तब धनुष सन्धान करके रघुकुलमणि श्रीरामजीने हँसकर बाणोंसे उन सिरोंको भलीभाँति बेध डाला। हाथोंमें मुण्डोंकी मालाएँ लेकर, बहुत-सी कालिकाएँ झुंड-की-झुंड मिलकर इकट्ठी हुईं और वे रुधिरकी नदीमें स्नान करके चलीं। मानो संग्रामरूपी वटवृक्षकी पूजा करने जा रही हों।

दो०—पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड ॥ ९३ ॥

फिर रावणने क्रोधित होकर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। वह विभीषणके सामने ऐसी चली जैसे काल (यमराज) का दण्ड हो ॥ ९३ ॥

चौ०—आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥ १ ॥

अत्यन्त भयानक शक्तिको आती देख और यह विचारकर कि मेरा प्रण शरणागतके दुःखका नाश करना है, श्रीरामजीने तुरंत ही विभीषणको पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली ॥ १ ॥

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो ॥ २ ॥

शक्ति लगनेसे उन्हें कुछ मूर्छा हो गयी। प्रभुने तो यह लीला की, पर देवताओंको व्याकुलता हुई। प्रभुको श्रम (शारीरिक कष्ट) प्राप्त हुआ देखकर विभीषण क्रोधित हो हाथमें गदा लेकर दौड़े ॥ २ ॥

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे ॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए ॥ ३ ॥

[और बोले—] अरे अभागे ! मूर्ख, नीच, दुर्बुद्धि ! तूने देवता, मनुष्य, मुनि,

नाग सभीसे विरोध किया। तूने आदरसहित शिवजीको सिर चढ़ाये। इसीसे एक-एकके बदलेमें करोड़ों पाये ॥ ३ ॥

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव कालु सीस पर नाच्यो ॥
राम बिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा ॥ ४ ॥

उसी कारणसे अरे दुष्ट! तू अबतक बचा है। [किंतु] अब काल तेरे सिरपर नाच रहा है। अरे मूर्ख! तू रामविमुख होकर सम्पत्ति (सुख) चाहता है? ऐसा कहकर विभीषणने रावणकी छातीके बीचोबीच गदा मारी ॥ ४ ॥

छं०—उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो।
दस बदन सोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भर्‌यो ॥
द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै ॥

बीच छातीमें कठोर गदाकी घोर और कठिन चोट लगते ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके दसों मुखोंसे रुधिर बहने लगा; वह अपनेको फिर सँभालकर क्रोधमें भरा हुआ दौड़ा। दोनों अत्यन्त बलवान् योद्धा भिड़ गये और मल्लयुद्धमें एक-दूसरेके विरुद्ध होकर मारने लगे। श्रीरघुवीरके बलसे गर्वित विभीषण उसको (रावण-जैसे जगद्विजयी योद्धाको) पासंगके बराबर भी नहीं समझते।

दो०—उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥ ९४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! विभीषण क्या कभी रावणके सामने आँख उठाकर भी देख सकता था? परंतु अब वही कालके समान उससे भिड़ रहा है। यह श्रीरघुवीरका ही प्रभाव है ॥ ९४ ॥

चौ०—देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माझ तेहि मारेसि लाता ॥ १ ॥

विभीषणको बहुत ही थका हुआ देखकर हनुमान्‌जी पर्वत धारण किये हुए दौड़े। उन्होंने उस पर्वतसे रावणके रथ, घोड़े और सारथिका संहार कर डाला और उसके सीनेपर लात मारी ॥ १ ॥

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गयउ बिभीषनु जहँ जनत्राता ॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी ॥ २ ॥

रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर अत्यन्त काँपने लगा। विभीषण वहाँ गये जहाँ सेवकोंके रक्षक श्रीरामजी थे। फिर रावणने ललकारकर हनुमान्‌जीको मारा। वे पूँछ फैलाकर आकाशमें चले गये ॥ २ ॥

गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥ ३॥

रावणने पूँछ पकड़ ली; हनुमान्‌जी उसको साथ लिये हुए ऊपर उड़े। फिर लौटकर महाबलवान् हनुमान्‌जी उससे भिड़ गये। दोनों समान योद्धा आकाशमें लड़ते हुए एक दूसरेको क्रोध करके मारने लगे॥ ३॥

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं॥
बुधि बल निसिचर परइ न पार्‌यो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो॥ ४॥

दोनों बहुत-से छल-बल करते हुए आकाशमें ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो कज्जलगिरि और सुमेरु पर्वत लड़ रहे हों। जब बुद्धि और बलसे राक्षस गिराये न गिरा, तब मारुति श्रीहनुमान्‌जीने प्रभुको स्मरण किया॥ ४॥

छं०—सँभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुज बल दलमले॥

श्रीरघुवीरका स्मरण करके धीर हनुमान्‌जीने ललकारकर रावणको मारा। वे दोनों पृथ्वीपर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं; देवताओंने दोनोंकी 'जय-जय' पुकारी। हनुमान्‌जीपर संकट देखकर वानर-भालू क्रोधातुर होकर दौड़े। किंतु रण-मदमाते रावणने सब योद्धाओंको अपने प्रचण्ड भुजाओंके बलसे कुचल और मसल डाला।

दो०—तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पापंड॥ ९५॥

तब श्रीरघुवीरके ललकारनेपर प्रचण्ड वीर वानर दौड़े। वानरोंके प्रबल दलको देखकर रावणने माया प्रकट की॥ ९५॥

चौ०—अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते॥ १॥

क्षणभरके लिये वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्टने अनेकों रूप प्रकट किये। श्रीरघुनाथजीकी सेनामें जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहाँ-तहाँ (चारों ओर) प्रकट हो गये॥ १॥

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा॥ २॥

वानरोंने अपरिमित रावण देखे। भालू और वानर सब जहाँ-तहाँ (इधर-उधर) भाग चले। वानर धीरज नहीं धरते। हे लक्ष्मणजी! हे रघुवीर! बचाइये, बचाइये, यों पुकारते हुए वे भागे जा रहे हैं॥ २॥

दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई ॥ ३ ॥

दसों दिशाओंमें करोड़ों रावण दौड़ते हैं और घोर, कठोर, भयानक गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गये और ऐसा कहते हुए भाग चले कि हे भाई! अब जयकी आशा छोड़ दो! ॥ ३ ॥

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर ॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी ॥ ४ ॥

एक ही रावणने सब देवताओंको जीत लिया था, अब तो बहुत-से रावण हो गये हैं। इससे अब पहाड़की गुफाओंका आश्रय लो (अर्थात् उनमें छिप रहो)। वहाँ ब्रह्मा, शम्भु और ज्ञानी मुनि ही डटे रहे, जिन्होंने प्रभुकी कुछ महिमा जानी थी ॥ ४ ॥

छं०—जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे ॥
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे ॥

जो प्रभुका प्रताप जानते थे, वे निर्भय डटे रहे। वानरोंने शत्रुओं (बहुत-से रावणों) को सच्चा ही मान लिया। [इससे] सब वानर-भालू विचलित होकर 'हे कृपालु! रक्षा कीजिये' [यों पुकारते हुए] भयसे व्याकुल होकर भाग चले। अत्यन्त बलवान् रणबाँकुरे हनुमान्‌जी, अङ्गद, नील और नल लड़ते हैं और कपटरूपी भूमिसे अङ्कुरकी भाँति उपजे हुए कोटि-कोटि योद्धा रावणोंको मसलते हैं।

दो०—सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस ॥ ९६ ॥

देवताओं और वानरोंको विकल देखकर कोसलपति श्रीरामजी हँसे और शार्ङ्ग-धनुषपर एक बाण चढ़ाकर [मायाके बने हुए] सब रावणोंको मार डाला ॥ ९६ ॥

चौ०—प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी ॥
रावनु एकु देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे ॥ १ ॥

प्रभुने क्षणभरमें सब माया काट डाली। जैसे सूर्यके उदय होते ही अन्धकारकी राशि फट जाती है (नष्ट हो जाती है)। अब एक ही रावणको देखकर देवता हर्षित हुए और उन्होंने लौटकर प्रभुपर बहुत-से पुष्प बरसाये ॥ १ ॥

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे ॥
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीने भुजा उठाकर सब वानरोंको लौटाया। तब वे एक दूसरेको पुकार-

पुकारकर लौट आये। प्रभुका बल पाकर रीछ-वानर दौड़ पड़े। जल्दीसे कूदकर वे रणभूमिमें आ गये ॥ २ ॥

अस्तुति करत देवतन्हि देखें। भयउँ एक मैं इन्ह के लेखें॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥ ३ ॥

देवताओंको श्रीरामजीकी स्तुति करते देखकर रावणने सोचा, मैं इनकी समझमें एक हो गया। [परंतु इन्हें यह पता नहीं कि इनके लिये मैं एक ही बहुत हूँ] और कहा—अरे मूर्खो! तुम तो सदाके ही मेरे मरैल (मेरी मार खानेवाले) हो। ऐसा कहकर वह क्रोध करके आकाशपर [देवताओंकी ओर] दौड़ा ॥ ३ ॥

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरें आगे॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥ ४ ॥

देवता हाहाकार करते हुए भागे। [रावणने कहा—] दुष्टो! मेरे आगेसे कहाँ जा सकोगे? देवताओंको व्याकुल देखकर अंगद दौड़े और उछलकर रावणका पैर पकड़कर [उन्होंने] उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४ ॥

छं०—गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई॥

उसे पकड़कर पृथ्वीपर गिराकर लात मारकर बालिपुत्र अंगद प्रभुके पास चले गये। रावण सँभलकर उठा और बड़े भयंकर कठोर शब्दसे गरजने लगा। वह दर्प करके दसों धनुष चढ़ाकर उनपर बहुत-से बाण संधान करके बरसाने लगा। उसने सब योद्धाओंको घायल और भयसे व्याकुल कर दिया और अपना बल देखकर वह हर्षित होने लगा।

दो०—तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥ ९७॥

तब श्रीरघुनाथजीने रावणके सिर, भुजाएँ, बाण और धनुष काट डाले। पर वे फिर बहुत बढ़ गये, जैसे तीर्थमें किये हुए पाप बढ़ जाते हैं (कई गुना अधिक भयानक फल उत्पन्न करते हैं) ॥ ९७ ॥

चौ०—सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा ॥ १ ॥

शत्रुके सिर और भुजाओंकी बढ़ती देखकर रीछ-वानरोंको बहुत ही क्रोध हुआ। यह मूर्ख भुजाओंके और सिरोंके कटनेपर भी नहीं मरता, [ऐसा कहते हुए] भालू और वानर योद्धा क्रोध करके दौड़े ॥ १ ॥

बालितनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥ २ ॥

बालिपुत्र अंगद, मारुति हनुमान्‌जी, नल, नील, वानरराज सुग्रीव और द्विविद आदि बलवान् उसपर वृक्ष और पर्वतोंका प्रहार करते हैं। वह उन्हीं पर्वतों और वृक्षोंको पकड़कर वानरोंको मारता है॥ २॥

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ॥ ३ ॥

कोई एक वानर नखोंसे शत्रुके शरीरको फाड़कर भाग जाते हैं, तो कोई उसे लातोंसे मारकर। तब नल और नील रावणके सिरोंपर चढ़ गये और नखोंसे उसके ललाटको फाड़ने लगे॥ ३॥

रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं॥ ४ ॥

खून देखकर उसे हृदयमें बड़ा दुःख हुआ। उसने उनको पकड़नेके लिये हाथ फैलाये, पर वे पकड़में नहीं आते, हाथोंके ऊपर-ऊपर ही फिरते हैं। मानो दो भौंरे कमलोंके वनमें विचरण कर रहे हों॥ ४॥

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे॥ ५ ॥

तब उसने क्रोध करके उछलकर दोनोंको पकड़ लिया। पृथ्वीपर पटकते समय वे उसकी भुजाओंको मरोड़कर भाग छूटे। फिर उसने क्रोध करके हाथोंमें दसों धनुष लिये और वानरोंको बाणोंसे मारकर घायल कर दिया॥ ५॥

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा॥ ६ ॥

हनुमान्‌जी आदि सब वानरोंको मूर्छित करके और संध्याका समय पाकर रावण हर्षित हुआ। समस्त वानर-वीरोंको मूर्छित देखकर रणधीर जाम्बवान् दौड़े॥ ६॥

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकइ भट नाना॥ ७ ॥

जाम्बवान्‌के साथ जो भालू थे, वे पर्वत और वृक्ष धारण किये रावणको ललकार-ललकारकर मारने लगे। बलवान् रावण क्रोधित हुआ और पैर पकड़-पकड़कर वह अनेकों योद्धाओंको पृथ्वीपर पटकने लगा॥ ७॥

देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥ ८ ॥

जाम्बवान्‌ने अपने दलका विध्वंस देखकर क्रोध करके रावणकी छातीमें लात मारी।८।

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत विकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहुँ कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो॥

छातीमें लातका प्रचण्ड आघात लगते ही रावण व्याकुल होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसने बीसों हाथोंमें भालुओंको पकड़ रक्खा था। [ऐसा जान पड़ता था] मानो रात्रिके समय भौंरे कमलोंमें बसे हुए हों। उसे मूर्छित देखकर, फिर लात मारकर ऋक्षराज जाम्बवान् प्रभुके पास चले गये। रात्रि जानकर सारथि रावणको रथमें डालकर उसे होशमें लानेका उपाय करने लगा।

दो०—मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास॥ ९८॥

मूर्छा दूर होनेपर सब रीछ-वानर प्रभुके पास आये। उधर सब राक्षसोंने बहुत ही भयभीत होकर रावणको घेर लिया॥ ९८॥

मासपारायण, छब्बीसवाँ विश्राम

चौ०—तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥ १॥

उसी रात त्रिजटाने सीताजीके पास जाकर उन्हें सब कथा कह सुनायी। शत्रुके सिर और भुजाओंकी बढ़तीका संवाद सुनकर सीताजीके हृदयमें बड़ा भय हुआ॥ १॥

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता॥ २॥

[उनका] मुख उदास हो गया, मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गयी। तब सीताजी त्रिजटासे बोलीं—हे माता! बताती क्यों नहीं? क्या होगा? सम्पूर्ण विश्वको दुःख देनेवाला यह किस प्रकार मरेगा?॥ २॥

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥ ३॥

श्रीरघुनाथजीके बाणोंसे सिर कटनेपर भी नहीं मरता। विधाता सारे चरित्र विपरीत (उलटे) ही कर रहा है। [सच बात तो यह है कि] मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान्‌के चरण-कमलोंसे अलग कर दिया है॥ ३॥

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥ ४॥

जिसने कपटका झूठा स्वर्णमृग बनाया था, वही दैव अब भी मुझपर रूठा हुआ

है, जिस विधाताने मुझसे दुःसह दुःख सहन कराये और लक्ष्मणको कड़ुवे वचन कहलाये, ॥४॥

रघुपति बिरह सविष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी॥
ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥ ५॥

जो श्रीरघुनाथजीके विरहरूपी बड़े विषैले बाणोंसे तक-तककर मुझे बहुत बार मारकर, अब भी मार रहा है और ऐसे दुःखमें भी जो मेरे प्राणोंको रख रहा है, वही विधाता उस (रावण) को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं ॥ ५ ॥

बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥ ६॥

कृपानिधान श्रीरामजीकी याद कर-करके जानकीजी बहुत प्रकारसे विलाप कर रही हैं। त्रिजटाने कहा—हे राजकुमारी! सुनो, देवताओंका शत्रु रावण हृदयमें बाण लगते ही मर जायगा ॥ ६ ॥

प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥ ७॥

परंतु प्रभु उसके हृदयमें बाण इसलिये नहीं मारते कि इसके हृदयमें जानकीजी (आप) बसती हैं ॥ ७ ॥

छं०—एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥

[वे यही सोचकर रह जाते हैं कि] इसके हृदयमें जानकीका निवास है, जानकीके हृदयमें मेरा निवास है और मेरे उदरमें अनेकों भुवन हैं। अतः रावणके हृदयमें बाण लगते ही सब भुवनोंका नाश हो जायगा। यह वचन सुनकर, सीताजीके मनमें अत्यन्त हर्ष और विषाद हुआ देखकर त्रिजटाने फिर कहा—हे सुन्दरी! महान् संदेहका त्याग कर दो; अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा—

दो०—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥ ९९॥

सिरोंके बार-बार काटे जानेसे जब वह व्याकुल हो जायगा और उसके हृदयसे तुम्हारा ध्यान छूट जायगा, तब सुजान (अन्तर्यामी) श्रीरामजी रावणके हृदयमें बाण मारेंगे ॥९९॥

चौ०—अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥ १॥

ऐसा कहकर और सीताजीको बहुत प्रकारसे समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गयी। श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावका स्मरण करके जानकीजीको अत्यन्त विरहव्यथा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥

निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरहँ जानकी दुखारी॥ २॥

वे रात्रिकी और चन्द्रमाकी बहुत प्रकारसे निन्दा कर रही हैं [और कह रही हैं—] रात युगके समान बड़ी हो गयी, वह बीतती ही नहीं। जानकीजी श्रीरामजीके विरहमें दुःखी होकर मन-ही-मन भारी विलाप कर रही हैं॥ २॥

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥ ३॥

जब विरहके मारे हृदयमें दारुण दाह हो गया, तब उनका बायाँ नेत्र और बाहु फड़क उठे। शकुन समझकर उन्होंने मनमें धैर्य धारण किया कि अब कृपालु श्रीरघुवीर अवश्य मिलेंगे॥ ३॥

इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा॥
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥ ४॥

यहाँ आधी रातको रावण [मूर्च्छासे] जगा और अपने सारथिपर रुष्ट होकर कहने लगा—अरे मूर्ख! तूने मुझे रणभूमिसे अलग कर दिया। अरे अधम! अरे मन्दबुद्धि! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है!॥ ४॥

तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भयउ घनेरा॥ ५॥

सारथिने चरण पकड़कर रावणको बहुत प्रकारसे समझाया। सवेरा होते ही वह रथपर चढ़कर फिर दौड़ा। रावणका आना सुनकर वानरोंकी सेनामें बड़ी खलबली मच गयी॥५॥

जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥ ६॥

वे भारी योद्धा जहाँ-तहाँ पर्वत और वृक्ष उखाड़कर [क्रोधसे] दाँत कटकटाकर दौड़े॥ ६॥

छं०—धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु ब्याकुल कियो॥

विकट और विकराल वानर-भालु हाथोंमें पर्वत लिये दौड़े। वे अत्यन्त क्रोध करके प्रहार करते हैं। उनके मारनेसे राक्षस भाग चले। बलवान् वानरोंने शत्रुकी सेनाको विचलित करके फिर रावणको घेर लिया। चारों ओरसे चपेटे मारकर और नखोंसे शरीर विदीर्णकर वानरोंने उसको व्याकुल कर दिया।

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार॥ १००॥

वानरोंको बड़ा ही प्रबल देखकर रावणने विचार किया और अन्तर्धान होकर क्षणभरमें उसने माया फैलायी ॥ १०० ॥

छं०—जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥ १ ॥

जब उसने पाखण्ड (माया) रचा, तब भयंकर जीव प्रकट हो गये। बेताल, भूत और पिशाच हाथोंमें धनुष-बाण लिये प्रकट हुए ॥ १ ॥

जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल॥
करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान॥ २ ॥

योगिनियाँ एक हाथमें तलवार और दूसरे हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी लिये ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरहके गीत गाने लगीं ॥ २ ॥

धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान॥ ३ ॥

वे 'पकड़ो, मारो' आदि घोर शब्द बोल रही हैं। चारों ओर (सब दिशाओंमें) यह ध्वनि भर गयी। वे मुख फैलाकर खाने दौड़ती हैं। तब वानर भागने लगे ॥ ३ ॥

जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषै बालु॥ ४ ॥

वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं आग जलती देखते हैं। वानर-भालू व्याकुल हो गये। फिर रावण बालू बरसाने लगा ॥ ४ ॥

जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत॥ ५ ॥

वानरोंको जहाँ-तहाँ थकित (शिथिल) कर रावण फिर गरजा। लक्ष्मणजी और सुग्रीवसहित सभी वीर अचेत हो गये ॥ ५ ॥

हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ॥
एहि बिधि सकल बल तोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि॥ ६ ॥

हा राम! हा रघुनाथ! पुकारते हुए श्रेष्ठ योद्धा अपने हाथ मलते (पछताते) हैं। इस प्रकार सबका बल तोड़कर रावणने फिर दूसरी माया रची ॥ ६ ॥

प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ॥ ७ ॥

उसने बहुत-से हनुमान् प्रकट किये, जो पत्थर लिये दौड़े। उन्होंने चारों ओर दल बनाकर श्रीरामचन्द्रजीको जा घेरा ॥ ७ ॥

मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूँछ उठाइ॥
दहँ दिसि लँगूर बिराज। तेहिं मध्य कोसलराज॥ ८ ॥

वे पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे, 'मारो, पकड़ो, जाने न पावे।' उनके लंगूर (पूँछ) दसों दिशाओंमें शोभा दे रहे हैं और उनके बीचमें कोसलराज श्रीरामजी हैं ॥८॥

छं०—तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥ १ ॥

उनके बीचमें कोसलराजका सुन्दर श्याम शरीर ऐसी शोभा पा रहा है, मानो ऊँचे तमाल वृक्षके लिये अनेक इन्द्रधनुषोंकी श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) बनायी गयी हो। प्रभुको देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदयसे 'जय, जय, जय' ऐसा बोलने लगे। तब श्रीरघुवीरने क्रोध करके एक ही बाणसे निमेषमात्रमें रावणकी सारी माया हर ली ॥ १ ॥

माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥ २ ॥

माया दूर हो जानेपर वानर-भालू हर्षित हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े। श्रीरामजीने बाणोंके समूह छोड़े, जिनसे रावणके हाथ और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। श्रीरामजी और रावणके युद्धका चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पोंतक गाते रहें, तो वे भी उसका पार नहीं पा सकते ॥२॥

दो०—ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास॥ १०१(क)॥

उसी चरित्रके कुछ गुणगण मन्दबुद्धि तुलसीदासने कहे हैं, जैसे मक्खी भी अपने पुरुषार्थके अनुसार आकाशमें उड़ती है ॥ १०१ (क) ॥

काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस॥ १०१(ख)॥

सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गयीं। फिर भी वीर रावण मरता नहीं। प्रभु तो खेल कर रहे हैं; परंतु मुनि, सिद्ध, देवता उस क्लेशको देखकर (प्रभुको क्लेश पाते समझकर) व्याकुल हैं ॥ १०१ (ख) ॥

चौ०—काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥ १ ॥

काटते ही सिरोंका समूह बढ़ जाता है, जैसे प्रत्येक लाभपर लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ। तब श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणकी ओर देखा ॥ १ ॥

उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनिसुखदायक॥ २॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! जिसकी इच्छामात्रसे काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवककी प्रीतिकी परीक्षा ले रहे हैं। [विभीषणजीने कहा—] हे सर्वज्ञ! हे चराचरके स्वामी! हे शरणागतके पालन करनेवाले! हे देवता और मुनियोंको सुख देनेवाले! सुनिये—॥ २॥

नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥ ३॥

इसके नाभिकुण्डमें अमृतका निवास है। हे नाथ! रावण उसीके बलपर जीता है। विभीषणके वचन सुनते ही कृपालु श्रीरघुनाथजीने हर्षित होकर हाथमें विकराल बाण लिये॥ ३॥

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥ ४॥

उस समय नाना प्रकारके अशकुन होने लगे। बहुत-से गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे। जगत‌्के दुःख (अशुभ) को सूचित करनेके लिये पक्षी बोलने लगे। आकाशमें जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गये॥ ४॥

दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥ ५॥

दसों दिशाओंमें अत्यन्त दाह होने लगा (आग लगने लगी)। बिना ही पर्व (योग) के सूर्यग्रहण होने लगा। मन्दोदरीका हृदय बहुत काँपने लगा। मूर्तियाँ नेत्र-मार्गसे जल बहाने लगीं॥ ५॥

छं०—प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥

मूर्तियाँ रोने लगीं, आकाशसे वज्रपात होने लगे, अत्यन्त प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूलिकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार इतने अधिक अमङ्गल होने लगे कि उनको कौन कह सकता है? अपरिमित उत्पात देखकर आकाशमें देवता व्याकुल होकर जय-जय पुकार उठे। देवताओंको भयभीत जानकर कृपालु श्रीरघुनाथजी धनुषपर बाण संधान करने लगे।

दो०—खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥ १०२॥

कानोंतक धनुषको खींचकर श्रीरघुनाथजीने इकतीस बाण छोड़े। वे श्रीरामचन्द्रजीके बाण ऐसे चले, मानो कालसर्प हों ॥ १०२ ॥

चौ०—सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा ॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा ॥ १ ॥

एक बाणने नाभिके अमृतकुण्डको सोख लिया। दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओंमें लगे। बाण सिरों और भुजाओंको लेकर चले। सिरों और भुजाओंसे रहित रुण्ड (धड़) पृथ्वीपर नाचने लगा ॥ १ ॥

धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा ॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी ॥ २ ॥

धड़ प्रचण्ड वेगसे दौड़ता है, जिससे धरती धँसने लगी। तब प्रभुने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। मरते समय रावण बड़े घोर शब्दसे गरजकर बोला—राम कहाँ हैं ? मैं ललकारकर उनको युद्धमें मारूँ ! ॥ २ ॥

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई ॥ ३ ॥

रावणके गिरते ही पृथ्वी हिल गयी। समुद्र, नदियाँ, दिशाओंके हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे। रावण धड़के दोनों टुकड़ोंको फैलाकर भालू और वानरोंके समुदायको दबाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३ ॥

मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई ॥ ४ ॥

रावणकी भुजाओं और सिरोंको मन्दोदरीके सामने रखकर रामबाण वहाँ चले, जहाँ जगदीश्वर श्रीरामजी थे। सब बाण जाकर तरकसमें प्रवेश कर गये। यह देखकर देवताओंने नगाड़े बजाये ॥ ४ ॥

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा ॥ ५ ॥

रावणका तेज प्रभुके मुखमें समा गया। यह देखकर शिवजी और ब्रह्माजी हर्षित हुए। ब्रह्माण्डभरमें जय-जयकी ध्वनि भर गयी। प्रबल भुजदण्डोंवाले श्रीरघुवीरकी जय हो ॥ ५ ॥

बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥ ६ ॥

देवता और मुनियोंके समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं—कृपालुकी जय हो, मुकुन्दकी जय हो, जय हो ! ॥ ६ ॥

छं०—जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो ॥

सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥ १॥

हे कृपाके कन्द! हे मोक्षदाता मुकुन्द! हे [राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि] द्वन्द्वोंके हरनेवाले! हे शरणागतको सुख देनेवाले प्रभो! हे दुष्ट-दलको विदीर्ण करनेवाले! हे कारणोंके भी परम कारण! हे सदा करुणा करनेवाले! हे सर्वव्यापक विभो! आपकी जय हो। देवता हर्षमें भरे हुए पुष्प बरसाते हैं, घमाघम नगाड़े बज रहे हैं। रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके अङ्गोंने बहुत-से कामदेवोंकी शोभा प्राप्त की॥ १॥

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥ २॥

सिरपर जटाओंका मुकुट है, जिसके बीच-बीचमें अत्यन्त मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं। मानो नीले पर्वतपर बिजलीके समूहसहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हैं। श्रीरामजी अपने भुजदण्डोंसे बाण और धनुष फिरा रहे हैं। शरीरपर रुधिरके कण अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। मानो तमालके वृक्षपर बहुत-सी ललमुनियाँ चिड़ियाँ अपने महान् सुखमें मग्न हुई निश्चल बैठी हों॥ २॥

दो०—कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।
भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥ १०३॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने कृपादृष्टिकी वर्षा करके देवसमूहको निर्भय कर दिया। वानर-भालू सब हर्षित हुए और सुखधाम मुकुन्दकी जय हो, ऐसा पुकारने लगे॥ १०३॥

चौ०—पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥ १॥

पतिके सिर देखते ही मन्दोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। स्त्रियाँ रोती हुई उठ दौड़ीं और उस (मन्दोदरी) को उठाकर रावणके पास आयीं॥ १॥

पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥ २॥

पतिकी दशा देखकर वे पुकार-पुकारकर रोने लगीं। उनके बाल खुल गये, देहकी सँभाल नहीं रही। वे अनेकों प्रकारसे छाती पीटती हैं और रोती हुई रावणके प्रतापका बखान करती हैं॥ २॥

तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा॥ ३॥

[वे कहती हैं—] हे नाथ! तुम्हारे बलसे पृथ्वी सदा काँपती रहती थी। अग्नि,

चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूलमें भरा हुआ पृथ्वीपर पड़ा है ॥ ३ ॥

बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा ॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं ॥ ४ ॥

वरुण, कुबेर, इन्द्र और वायु, इनमेंसे किसीने भी रणमें तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया। हे स्वामी! तुमने अपने भुजबलसे काल और यमराजको भी जीत लिया था। वही तुम आज अनाथकी तरह पड़े हो ॥ ४ ॥

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई ॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥ ५ ॥

तुम्हारी प्रभुता जगत्‌भरमें प्रसिद्ध है। तुम्हारे पुत्रों और कुटुम्बियोंके बलका हाय! वर्णन ही नहीं हो सकता। श्रीरामचन्द्रजीके विमुख होनेसे ही तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुलमें कोई रोनेवाला भी न रह गया ॥ ५ ॥

तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा ॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं ॥ ६ ॥

हे नाथ! विधाताकी सारी सृष्टि तुम्हारे वशमें थी। लोकपाल सदा भयभीत होकर तुमको मस्तक नवाते थे। किंतु हाय! अब तुम्हारे सिर और भुजाओंको गीदड़ खा रहे हैं। रामविमुखके लिये ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित ही है) ॥ ६ ॥

काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना ॥ ७ ॥

हे पति! कालके पूर्ण वशमें होनेसे तुमने [किसीका] कहना नहीं माना और चराचरके नाथ परमात्माको मनुष्य करके जाना ॥ ७ ॥

छं०—जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं ॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं ॥

दैत्यरूपी वनको जलानेके लिये अग्निस्वरूप साक्षात् श्रीहरिको तुमने मनुष्य करके जाना। शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन करुणामय भगवान्‌को हे प्रियतम! तुमने नहीं भजा। तुम्हारा यह शरीर जन्मसे ही दूसरोंसे द्रोह करनेमें तत्पर तथा पापसमूहमय रहा। इतनेपर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्रीरामजीने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ।

दो०—अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान ॥ १०४ ॥

अहह ! नाथ ! श्रीरघुनाथजीके समान कृपाका समुद्र दूसरा कोई नहीं है, जिन भगवान्‌ने तुमको वह गति दी जो योगिसमाजको भी दुर्लभ है ॥ १०४ ॥

चौ०—मंदोदरी बचन सुनि काना । सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना ॥
अज महेस नारद सनकादी । जे मुनिबर परमारथबादी ॥ १ ॥

मन्दोदरीके वचन कानोंमें सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभीने सुख माना। ब्रह्मा, महादेव, नारद और सनकादि तथा और भी जो परमार्थवादी (परमात्माके तत्त्वको जानने और कहनेवाले) श्रेष्ठ मुनि थे ॥ १ ॥

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी । प्रेम मगन सब भए सुखारी ॥
रुदन करत देखीं सब नारी । गयउ बिभीषनु मन दुख भारी ॥ २ ॥

वे सभी श्रीरघुनाथजीको नेत्र भरकर निरखकर प्रेममग्न हो गये और अत्यन्त सुखी हुए। अपने घरकी सब स्त्रियोंको रोती हुई देखकर विभीषणजीके मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ और वे उनके पास गये ॥ २ ॥

बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा । तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा ॥
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो । बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो ॥ ३ ॥

उन्होंने भाईकी दशा देखकर दुःख किया। तब प्रभु श्रीरामजीने छोटे भाईको आज्ञा दी [कि जाकर विभीषणको धैर्य बँधाओ]। लक्ष्मणजीने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया। तब विभीषण प्रभुके पास लौट आये ॥ ३ ॥

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका । करहु क्रिया परिहरि सब सोका ॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी । बिधिवत देस काल जियँ जानी ॥ ४ ॥

प्रभुने उनको कृपापूर्ण दृष्टिसे देखा [और कहा—] सब शोक त्यागकर रावणकी अन्त्येष्टि क्रिया करो। प्रभुकी आज्ञा मानकर और हृदयमें देश और कालका विचार करके विभीषणजीने विधिपूर्वक सब क्रिया की ॥ ४ ॥

दो०—मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि ॥ १०५ ॥

मन्दोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे (रावणको) तिलाञ्जलि देकर मनमें श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका वर्णन करती हुई महलको गयीं ॥ १०५ ॥

चौ०—आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो । कृपासिंधु तब अनुज बोलायो ॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला । जामवंत मारुति नयसीला ॥ १ ॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा । सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा ॥
पिता बचन मैं नगर न आवउँ । आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ ॥ २ ॥

सब क्रिया-कर्म करनेके बाद विभीषणने आकर पुनः सिर नवाया। तब कृपाके समुद्र श्रीरामजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको बुलाया। श्रीरघुनाथजीने कहा कि तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जाम्बवान् और मारुति—सब नीतिनिपुण लोग मिलकर विभीषणके साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो। पिताजीके वचनोंके कारण मैं नगरमें नहीं आ सकता। पर अपने ही समान वानर और छोटे भाईको भेजता हूँ॥ १-२॥

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥ ३॥

प्रभुके वचन सुनकर वानर तुरंत चले और उन्होंने जाकर राजतिलककी सारी व्यवस्था की। आदरके साथ विभीषणको सिंहासनपर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की॥ ३॥

जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥ ४॥

सभीने हाथ जोड़कर उनको सिर नवाये। तदनन्तर विभीषणजीसहित सब प्रभुके पास आये। तब श्रीरघुवीरने वानरोंको बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया॥ ४॥

छं०—किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

भगवान्‌ने अमृतके समान यह वाणी कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही बलसे यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषणने राज्य पाया। इसके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकोंमें नित्य नया बना रहेगा। जो लोग मेरे सहित तुम्हारी शुभ कीर्तिको परम प्रेमके साथ गायेंगे, वे बिना ही परिश्रम इस अपार संसारसागरका पार पा जायँगे।

दो०—प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥ १०६॥

प्रभुके वचन कानोंसे सुनकर वानरसमूह तृप्त नहीं होते। वे सब बार-बार सिर नवाते हैं और चरणकमलोंको पकड़ते हैं॥ १०६॥

चौ०—पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥ १॥

फिर प्रभुने हनुमान्‌जीको बुला लिया। भगवान्‌ने कहा—तुम लंका जाओ।

जानकीको सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल-समाचार लेकर तुम चले आओ ॥ १ ॥

तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥ २ ॥

तब हनुमान्‌जी नगरमें आये। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी [उनके सत्कारके लिये] दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकारसे हनुमान्‌जीकी पूजा की और फिर श्रीजानकीजीको दिखला दिया ॥ २ ॥

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥ ३ ॥

हनुमान्‌जीने [सीताजीको] दूरसे ही प्रणाम किया। जानकीजीने पहचान लिया कि यह वही श्रीरघुनाथजीका दूत है [और पूछा—] हे तात! कहो, कृपाके धाम मेरे प्रभु छोटे भाई और वानरोंकी सेनासहित कुशलसे तो हैं? ॥ ३ ॥

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥ ४ ॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता! कोसलपति श्रीरामजी सब प्रकारसे सकुशल हैं। उन्होंने संग्राममें दस सिरवाले रावणको जीत लिया है और विभीषणने अचल राज्य प्राप्त किया है। हनुमान्‌जीके वचन सुनकर सीताजीके हृदयमें हर्ष छा गया ॥ ४ ॥

छं०—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

श्रीजानकीजीके हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें [आनन्दाश्रुओंका] जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं—हे हनुमान्! मैं तुझे क्या दूँ? इस वाणी (समाचार) के समान तीनों लोकोंमें और कुछ भी नहीं है! [हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता! सुनिये, मैंने आज निःसंदेह सारे जगत्‌का राज्य पा लिया, जो मैं रणमें शत्रुसेनाको जीतकर भाईसहित निर्विकार श्रीरामजीको देख रहा हूँ।

दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥ १०७॥

[जानकीजीने कहा—] हे पुत्र! सुन, समस्त सद्‌गुण तेरे हृदयमें बसें और हे हनुमान्! शेष (लक्ष्मणजी) सहित कोसलपति प्रभु सदा तुझपर प्रसन्न रहें ॥ १०७ ॥

चौ०—अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई॥ १ ॥

हे तात ! अब तुम वही उपाय करो जिससे मैं इन नेत्रोंसे प्रभुके कोमल श्याम शरीरके दर्शन करूँ। तब श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर हनुमान्‌जीने जानकीजीका कुशल-समाचार सुनाया ॥ १ ॥

सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन ॥
मारुतसुत कें संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु ॥ २ ॥

सूर्यकुलभूषण श्रीरामजीने संदेश सुनकर युवराज अंगद और विभीषणको बुला लिया [और कहा—] पवनपुत्र हनुमान्‌के साथ जाओ और जानकीको आदरके साथ ले आओ ॥ २ ॥

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता ॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो ॥ ३ ॥

वे सब तुरंत ही वहाँ गये जहाँ सीताजी थीं। सब-की-सब राक्षसियाँ नम्रतापूर्वक उनकी सेवा कर रही थीं। विभीषणजीने शीघ्र ही उन लोगोंको समझा दिया। उन्होंने बहुत प्रकारसे सीताजीको स्नान कराया, ॥ ३ ॥

बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए ॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥ ४ ॥

बहुत प्रकारके गहने पहनाये और फिर वे एक सुन्दर पालकी सजाकर ले आये। सीताजी प्रसन्न होकर सुखके धाम प्रियतम श्रीरामजीका स्मरण करके उसपर हर्षके साथ चढ़ीं। ४।

बेतपानि रच्छक चहु पासा। चले सकल मन परम हुलासा ॥
देखन भालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए ॥ ५ ॥

चारों ओर हाथोंमें छड़ी लिये रक्षक चले। सबके मनोंमें परम उल्लास (उमंग) है। रीछ-वानर सब दर्शन करनेके लिये आये, तब रक्षक क्रोध करके उनको रोकने दौड़े ॥ ५ ॥

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु ॥
देखहुँ कपि जननी की नाईं। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं ॥ ६ ॥

श्रीरघुवीरने कहा—मित्र ! मेरा कहना मानो और सीताको पैदल ले आओ, जिससे वानर उसको माताकी तरह देखें, गोसाईं श्रीरामजीने हँसकर ऐसा कहा ॥ ६ ॥

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ॥ ७ ॥

प्रभुके वचन सुनकर रीछ-वानर हर्षित हो गये। आकाशसे देवताओंने बहुत-से फूल बरसाये। सीताजी [के असली स्वरूप] को पहले अग्निमें रक्खा था। अब भीतरके साक्षी भगवान् उनको प्रकट करना चाहते हैं ॥ ७ ॥

दो०—तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिषाद ॥ १०८ ॥

इसी कारण करुणाके भण्डार श्रीरामजीने लीलासे कुछ कड़े वचन कहे, जिन्हें सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं ॥ १०८ ॥

चौ०—प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥ १ ॥

प्रभुके वचनोंको सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्मसे पवित्र श्रीसीताजी बोलीं—हे लक्ष्मण! तुम मेरे धर्मके नेगी (धर्माचरणमें सहायक) बनो और तुरंत आग तैयार करो ॥ १ ॥

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥ २ ॥

श्रीसीताजीकी विरह, विवेक, धर्म और नीतिसे सनी हुई वाणी सुनकर लक्ष्मणजीके नेत्रोंमें [विषादके आँसुओंका] जल भर आया। वे दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे। वे भी प्रभुसे कुछ कह नहीं सकते ॥ २ ॥

देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए ॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामजीका रुख देखकर लक्ष्मणजी दौड़े और आग तैयार करके बहुत-सी लकड़ी ले आये। अग्निको खूब बढ़ी हुई देखकर जानकीजीके हृदयमें हर्ष हुआ। उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ ॥ ३ ॥

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना ॥ ४ ॥

[सीताजीने लीलासे कहा—] यदि मन, वचन और कर्मसे मेरे हृदयमें श्रीरघुवीरको छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसीका आश्रय) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मनकी गति जानते हैं, [मेरे भी मनकी गति जानकर] मेरे लिये चन्दनके समान शीतल हो जायँ ॥ ४ ॥

छं०—श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली ॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥ १ ॥

प्रभु श्रीरामजीका स्मरण करके और जिनके चरण महादेवजीके द्वारा वन्दित हैं तथा जिनमें सीताजीकी अत्यन्त विशुद्ध प्रीति है, उन कोसलपतिकी जय बोलकर जानकीजी-

ने चन्दनके समान शीतल हुई अग्निमें प्रवेश किया। प्रतिबिम्ब (सीताजीकी छायामूर्ति) और उनका लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्निमें जल गये। प्रभुके इन चरित्रोंको किसीने नहीं जाना। देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाशमें खड़े देखते हैं ॥ १ ॥

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जगबिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली ॥ २ ॥

तब अग्निने शरीर धारण करके वेदोंमें और जगत्‌में प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीताजी) का हाथ पकड़ उन्हें श्रीरामजीको वैसे ही समर्पित किया, जैसे क्षीरसागरने विष्णुभगवान्‌को लक्ष्मी समर्पित की थीं। वे सीताजी श्रीरामचन्द्रजीके वाम भागमें विराजित हुईं। उनकी उत्तम शोभा अत्यन्त ही सुन्दर है, मानो नये खिले हुए नीले कमलके पास सोनेके कमलकी कली सुशोभित हो ॥ २ ॥

दो०—बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान ॥१०९(क)॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। आकाशमें डंके बजने लगे। किन्नर गाने लगे। विमानोंपर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ १०९ (क) ॥

जनक सुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार ॥१०९(ख)॥

श्रीजानकीजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी अपरिमित और अपार शोभा देखकर रीछ-वानर हर्षित हो गये और सुखके सार श्रीरघुनाथजीकी जय बोलने लगे ॥ १०९ (ख) ॥

चौ०—तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई ॥
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी ॥ १ ॥

तब श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर इन्द्रका सारथि मातलि चरणोंमें सिर नवाकर [रथ लेकर] चला गया। तदनन्तर सदाके स्वार्थी देवता आये। वे ऐसे वचन कह रहे हैं, मानो बड़े परमार्थी हों ॥ १ ॥

दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी ॥ २ ॥

हे दीनबन्धु ! हे दयालु रघुराज ! हे परमदेव ! आपने देवताओंपर बड़ी दया की। विश्वके द्रोहमें तत्पर यह दुष्ट, कामी और कुमार्गपर चलनेवाला रावण अपने ही पापसे नष्ट हो गया ॥ २ ॥

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥ ३ ॥

आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य एकरस, स्वभावसे ही उदासीन (शत्रु-मित्र-भावरहित), अखण्ड, निर्गुण (मायिक गुणोंसे रहित), अजन्मा, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघशक्ति (जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती) और दयामय हैं॥ ३ ॥

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥ ४ ॥

आपने ही मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुरामके शरीर धारण किये। हे नाथ! जब-जब देवताओंने दुःख पाया, तब-तब अनेकों शरीर धारण करके आपने ही उनका दुःख नाश किया॥ ४ ॥

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा॥ ५ ॥

यह दुष्ट, मलिनहृदय, देवताओंका नित्य-शत्रु, काम, लोभ और मदके परायण तथा अत्यन्त क्रोधी था। ऐसे अधमोंके शिरोमणिने भी आपका परमपद पा लिया। इस बातका हमारे मनमें आश्चर्य हुआ॥ ५ ॥

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी॥
भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥ ६ ॥

हम देवता श्रेष्ठ अधिकारी होकर भी स्वार्थपरायण हो आपकी भक्तिको भुलाकर निरन्तर भवसागरके प्रवाह (जन्म-मृत्युके चक्र) में पड़े हैं। अब हे प्रभो! हम आपकी शरणमें आ गये हैं, हमारी रक्षा कीजिये॥ ६ ॥

दो०—करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि॥ ११० ॥

विनती करके देवता और सिद्ध सब जहाँ-के-तहाँ हाथ जोड़े खड़े रहे। तब अत्यन्त प्रेमसे पुलकित-शरीर होकर ब्रह्माजी स्तुति करने लगे—॥ ११० ॥

छं०—जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे॥
भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो॥ १ ॥

हे नित्य सुखधाम और [दुःखोंको हरनेवाले] हरि! हे धनुष-बाण धारण किये हुए रघुनाथजी! आपकी जय हो! हे प्रभो! आप भव (जन्म-मरण) रूपी हाथीको विदीर्ण करनेके लिये सिंहके समान हैं। हे नाथ! हे सर्वव्यापक! आप गुणोंके समुद्र और परम चतुर हैं॥ १ ॥

तन काम अनेक अनूप छवी । गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कवी ॥
जसु पावन रावन नाग महा । खगनाथ जथा करि कोप गहा ॥ २ ॥

आपके शरीरकी अनेकों कामदेवोंके समान, परंतु अनुपम छवि है । सिद्ध, मुनीश्वर और कवि आपके गुण गाते रहते हैं । आपका यश पवित्र है । आपने रावणरूपी महासर्पको गरुड़की तरह क्रोध करके पकड़ लिया ॥ २ ॥

जन रंजन भंजन सोक भयं । गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं ॥
अवतार उदार अपार गुनं । महि भार बिभंजन ग्यानघनं ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आप सेवकोंको आनन्द देनेवाले, शोक और भयका नाश करनेवाले, सदा क्रोधरहित और नित्य ज्ञानस्वरूप हैं । आपका अवतार श्रेष्ठ, अपार, दिव्य गुणोंवाला, पृथ्वीका भार उतारनेवाला और ज्ञानका समूह है ॥ ३ ॥

अज व्यापकमेकमनादि सदा । करुनाकर राम नमामि मुदा ॥
रघुबंस बिभूषन दूषन हा । कृत भूप बिभीषन दीन रहा ॥ ४ ॥

[किंतु अवतार लेनेपर भी] आप नित्य, अजन्मा, व्यापक, एक (अद्वितीय) और अनादि हैं । हे करुणाकी खान श्रीरामजी ! मैं आपको बड़े ही हर्षके साथ नमस्कार करता हूँ । हे रघुकुलके आभूषण ! हे दूषण राक्षसको मारनेवाले तथा समस्त दोषोंको हरनेवाले ! विभीषण दीन था, उसे आपने [लङ्काका] राजा बना दिया ॥ ४ ॥

गुन ग्यान निधान अमान अजं । नित राम नमामि बिभुं बिरजं ॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं । खल बृंद निकंद महा कुसलं ॥ ५ ॥

हे गुण और ज्ञानके भण्डार ! हे मानरहित ! हे अजन्मा ! व्यापक और मायिक विकारोंसे रहित श्रीराम ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ । आपके भुजदण्डोंका प्रताप और बल प्रचण्ड है । दुष्टसमूहके नाश करनेमें आप परम निपुण हैं ॥ ५ ॥

बिनु कारन दीन दयाल हितं । छबि धाम नमामि रमा सहितं ॥
भव तारन कारन काज परं । मन संभव दारुन दोष हरं ॥ ६ ॥

हे बिना ही कारण दीनोंपर दया तथा उनका हित करनेवाले और शोभाके धाम ! मैं श्रीजानकीजीसहित आपको नमस्कार करता हूँ । आप भवसागरसे तारनेवाले हैं, कारणरूपा प्रकृति और कार्यरूप जगत् दोनोंसे परे हैं और मनसे उत्पन्न होनेवाले कठिन दोषोंको हरनेवाले हैं ॥ ६ ॥

सर चाप मनोहर त्रोन धरं । जलजारुन लोचन भूपबरं ॥
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं । मद मार मुधा ममता समनं ॥ ७ ॥

आप मनोहर बाण, धनुष और तरकस धारण करनेवाले हैं । [लाल] कमलके

समान रक्तवर्ण आपके नेत्र हैं। आप राजाओंमें श्रेष्ठ, सुखके मन्दिर, सुन्दर, श्री (लक्ष्मीजी) के वल्लभ तथा मद (अहंकार), काम और झूठी ममताके नाश करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

अनवद्य अखंड न गोचर गो। सबरूप सदा सब होइ न गो ॥
इति वेद वदंति न दंतकथा। रवि आतप भिन्नमभिन्न जथा ॥ ८ ॥

आप अनिन्द्य या दोषरहित हैं, अखण्ड हैं, इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं। सदा सर्वरूप होते हुए भी आप वह सब कभी हुए ही नहीं, ऐसा वेद कहते हैं। यह [कोई] दन्तकथा (कोरी कल्पना) नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्यका प्रकाश अलग-अलग हैं और अलग नहीं भी हैं, वैसे ही आप भी संसारसे भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही हैं ॥ ८ ॥

कृतकृत्य विभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए ॥
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे ॥ ९ ॥

हे व्यापक प्रभो! ये सब वानर कृतार्थरूप हैं, जो आदरपूर्वक ये आपका मुख देख रहे हैं। [और] हे हरे! हमारे [अमर] जीवन और देव (दिव्य) शरीरको धिक्कार है, जो हम आपकी भक्तिसे रहित हुए संसारमें (सांसारिक विषयोंमें) भूले पड़े हैं ॥ ९ ॥

अब दीनदयाल दया करिऐ। मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ ॥
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिऐ। दुख सो सुख मानि सुखी चरिऐ ॥ १० ॥

हे दीनदयालु! अब दया कीजिये और मेरी उस विभेद उत्पन्न करनेवाली बुद्धिको हर लीजिये, जिससे मैं विपरीत कर्म करता हूँ और जो दुःख है, उसे सुख मानकर आनन्दसे विचरता हूँ ॥ १० ॥

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा ॥
नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं ॥ ११ ॥

आप दुष्टोंका खण्डन करनेवाले और पृथ्वीके रमणीय आभूषण हैं। आपके चरणकमल श्रीशिव-पार्वतीद्वारा सेवित हैं। हे राजाओंके महाराज! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें सदा मेरा कल्याणदायक [अनन्य] प्रेम हो ॥ ११ ॥

दो०—बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात ॥ १११ ॥

इस प्रकार ब्रह्माजीने अत्यन्त प्रेम-पुलकित शरीरसे विनती की। शोभाके समुद्र श्रीरामजीके दर्शन करते-करते उनके नेत्र तृप्त ही नहीं होते थे ॥ १११ ॥

चौ०—तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा ॥ १ ॥

उसी समय दशरथजी वहाँ आये। पुत्र (श्रीरामजी) को देखकर उनके नेत्रोंमें

[प्रेमाश्रुओंका] जल छा गया । छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित प्रभुने उनकी वन्दना की और तब पिताने उनको आशीर्वाद दिया ॥ १ ॥

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ । जीत्यों अजय निसाचर राऊ ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी । नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी ॥ २ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे तात ! यह सब आपके पुण्योंका प्रभाव है, जो मैंने अजेय राक्षसराजको जीत लिया । पुत्रके वचन सुनकर उनकी प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी ! नेत्रोंमें जल छा गया और रोमावली खड़ी हो गयी ॥ २ ॥

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना । चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना ॥
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो । दसरथ भेद भगति मन लायो ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीने पहलेके (जीवित-कालके) प्रेमको विचारकर, पिताकी ओर देखकर ही उन्हें अपने स्वरूपका दृढ़ ज्ञान करा दिया । हे उमा ! दशरथजीने भेदभक्तिमें अपना मन लगाया था, इसीसे उन्होंने [कैवल्य] मोक्ष नहीं पाया ॥ ३ ॥

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं । तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं ॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा । दसरथ हरषि गए सुरधामा ॥ ४ ॥

[मायारहित सच्चिदानन्दमय स्वरूपभूत दिव्यगुणयुक्त] सगुणस्वरूपकी उपासना करनेवाले भक्त इस प्रकारका मोक्ष लेते भी नहीं । उनको श्रीरामजी अपनी भक्ति देते हैं । प्रभुको [इष्टबुद्धिसे] बार-बार प्रणाम करके दशरथजी हर्षित होकर देवलोकको चले गये ॥ ४ ॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस ।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस ॥ ११२ ॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित परम कुशल प्रभु श्रीकोसलाधीशकी शोभा देखकर देवराज इन्द्र मनमें हर्षित होकर स्तुति करने लगे—॥ ११२ ॥

छं०—जय राम सोभा धाम । दायक प्रनत बिश्राम ॥
धृत त्रोन बर सर चाप । भुजदंड प्रबल प्रताप ॥ १ ॥

शोभाके धाम, शरणागतको विश्राम देनेवाले, श्रेष्ठ तरकस, धनुष और बाण धारण किये हुए, प्रबल प्रतापी भुजदण्डोंवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ! ॥ १ ॥

जय दूषनारि खरारि । मर्दन निसाचर धारि ॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ । भए देव सकल सनाथ ॥ २ ॥

हे खर और दूषणके शत्रु और राक्षसोंकी सेनाके मर्दन करनेवाले ! आपकी जय हो । हे नाथ ! आपने इस दुष्टको मारा, जिससे सब देवता सनाथ (सुरक्षित) हो गये ॥ २ ॥

जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार ॥
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल ॥ ३ ॥

हे भूमिका भार हरनेवाले! हे अपार श्रेष्ठ महिमावाले! आपकी जय हो। हे रावणके शत्रु! हे कृपालु! आपकी जय हो। आपने राक्षसोंको बेहाल (तहस-नहस) कर दिया ॥३॥

लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब ॥
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब कें लाग ॥ ४ ॥

लंकापति रावणको अपने बलका बहुत घमंड था। उसने देवता और गन्धर्व सभीको अपने वशमें कर लिया था और वह मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी और नाग आदि सभीके हठपूर्वक (हाथ धोकर) पीछे पड़ गया था ॥ ४ ॥

परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट ॥
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल ॥ ५ ॥

वह दूसरोंसे द्रोह करनेमें तत्पर और अत्यन्त दुष्ट था। उस पापीने वैसा ही फल पाया। अब हे दीनोंपर दया करनेवाले! हे कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले! सुनिये ॥५॥

मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान ॥
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज ॥ ६ ॥

मुझे अत्यन्त अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है, पर अब प्रभु (आप) के चरणकमलोंके दर्शन करनेसे दुःख-समूहका देनेवाला मेरा वह अभिमान जाता रहा ॥ ६ ॥

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव ॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप ॥ ७ ॥

कोई उन निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करते हैं, जिन्हें वेद अव्यक्त (निराकार) कहते हैं; परंतु हे रामजी! मुझे तो आपका यह सगुण कोसलराज-स्वरूप ही प्रिय लगता है ॥ ७ ॥

बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत ॥
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास ॥ ८ ॥

श्रीजानकीजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयमें अपना घर बनाइये। हे रमानिवास! मुझे अपना दास समझिये और अपनी भक्ति दीजिये ॥ ८ ॥

छं०—दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं ॥

सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुज तनु अतुलितबलं ।
ब्रह्मादि संकर सेव्य राम नमामि करुना कोमलं ॥

हे रमानिवास ! हे शरणागतके भयको हरनेवाले और उसे सब प्रकारका सुख देनेवाले ! मुझे अपनी भक्ति दीजिये । हे सुखके धाम ! हे अनेकों कामदेवोंकी छबिवाले रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे देवसमूहको आनन्द देनेवाले, [जन्म-मृत्यु, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि] द्वन्द्वोंके नाश करनेवाले, मनुष्यशरीरधारी, अतुलनीय बलवाले, ब्रह्मा और शिव आदिसे सेवनीय, करुणासे कोमल श्रीरामजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

दो०—अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल ।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल ॥ ११३ ॥

हे कृपालु ! अब मेरी ओर कृपा करके (कृपादृष्टिसे) देखकर आज्ञा दीजिये कि मैं क्या [सेवा] करूँ ? इन्द्रके ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु श्रीरामजी बोले—॥ ११३ ॥

चौ०—सुनु सुरपति कपि भालु हमारे । परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे ॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना । सकल जिआउ सुरेस सुजाना ॥ १ ॥

हे देवराज ! सुनो, हमारे वानर-भालू, जिन्हें निशाचरोंने मार डाला है, पृथ्वीपर पड़े हैं । इन्होंने मेरे हितके लिये अपना प्राण त्याग दिये । हे सुजान देवराज ! इन सबको जिला दो ॥ १ ॥

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी । अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी ॥
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई । केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई ॥ २ ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़ ! सुनिये, प्रभुके ये वचन अत्यन्त गहन (गूढ़) हैं । ज्ञानी मुनि ही इन्हें जान सकते हैं । प्रभु श्रीरामजी त्रिलोकीको मारकर जिला सकते हैं । यहाँ तो उन्होंने केवल इन्द्रको बड़ाई दी है ॥ २ ॥

सुधा बरषि कपि भालु जिआए । हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए ॥
सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर । जिए भालु कपि नहिं रजनीचर ॥ ३ ॥

इन्द्रने अमृत बरसाकर वानर-भालुओंको जिला दिया । सब हर्षित होकर उठे और प्रभुके पास आये । अमृतकी वर्षा दोनों ही दलोंपर हुई । पर रीछ-वानर ही जीवित हुए, राक्षस नहीं ॥ ३ ॥

रामाकार भए तिन्ह के मन । मुक्त भए छूटे भव बंधन ॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा । जिए सकल रघुपति कीं ईछा ॥ ४ ॥

क्योंकि राक्षसोंके मन तो मरते समय रामाकार हो गये थे । अतः वे मुक्त हो गये,

उनके भव-बन्धन छूट गये। किंतु वानर और भालू तो सब देवांश (भगवान्‌की लीलाके परिकर) थे। इसलिये वे सब श्रीरघुनाथजीकी इच्छासे जीवित हो गये ॥ ४ ॥

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ॥
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पाव न ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके समान दीनोंका हित करनेवाला कौन है? जिन्होंने सारे राक्षसोंको मुक्त कर दिया। दुष्ट, पापोंके घर और कामी रावणने भी वह गति पायी, जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते ॥ ५ ॥

दो०—सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान ॥११४(क)॥

फूलोंकी वर्षा करके सब देवता सुन्दर विमानोंपर चढ़-चढ़कर चले। तब सुअवसर जानकर सुजान शिवजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पास आये—॥ ११४ (क) ॥

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि ॥११४(ख)॥

और परम प्रेमसे दोनों हाथ जोड़कर, कमलके समान नेत्रोंमें जल भरकर पुलकित-शरीर और गद्‌गद वाणीसे त्रिपुरारि शिवजी विनती करने लगे—॥ ११४ (ख) ॥

छं०—मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन ॥ १ ॥

हे रघुकुलके स्वामी! सुन्दर हाथोंमें श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाण धारण किये हुए आप मेरी रक्षा कीजिये। आप महामोहरूपी मेघसमूहके [उड़ानेके] लिये प्रचण्ड पवन हैं, संशयरूपी वनके [भस्म करनेके] लिये अग्नि हैं और देवताओंको आनन्द देनेवाले हैं ॥ १ ॥

अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन ॥ २ ॥

आप निर्गुण, सगुण, दिव्य गुणोंके धाम और परम सुन्दर हैं। भ्रमरूपी अन्धकारके [नाशके] लिये प्रबल प्रतापी सूर्य हैं। काम, क्रोध और मदरूपी हाथियोंके [वधके] लिये सिंहके समान आप इस सेवकके मनरूपी वनमें निरन्तर निवास कीजिये ॥ २ ॥

बिषय मनोरथ पुंज कंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन ॥
भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर ॥ ३ ॥

विषयकामनाओंके समूहरूपी कमलवनके [नाशके] लिये आप प्रबल पाला हैं, आप उदार और मनसे परे हैं। भवसागर [को मथने] के लिये आप मन्दराचल

पर्वत हैं। आप हमारे परम भयको दूर कीजिये और हमें दुस्तर संसारसागरसे पार कीजिये।

स्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन॥
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर॥ ४॥
मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन॥ ५॥

हे श्यामसुन्दर-शरीर! हे कमलनयन! हे दीनबन्धु! हे शरणागतको दुःखसे छुड़ानेवाले! हे राजा रामचन्द्रजी! आप छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीजीसहित निरन्तर मेरे हृदयके अंदर निवास कीजिये। आप मुनियोंको आनन्द देनेवाले, पृथ्वीमण्डलके भूषण, तुलसीदासके प्रभु और भयका नाश करनेवाले हैं॥ ४-५॥

दो०—नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार॥ ११५॥

हे नाथ! जब अयोध्यापुरीमें आपका राजतिलक होगा, तब हे कृपासागर! मैं आपकी उदार लीला देखने आऊँगा॥ ११५॥

चौ०—करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषनु आए॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी॥ १॥

जब शिवजी विनती करके चले गये, तब विभीषणजी प्रभुके पास आये और चरणोंमें सिर नवाकर कोमल वाणीसे बोले—हे शार्ङ्गधनुषके धारण करनेवाले प्रभो! मेरी विनती सुनिये—॥ १॥

सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन जस त्रिभुवन बिस्तार्‌यो॥
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥ २॥

आपने कुल और सेनासहित रावणका वध किया, त्रिभुवनमें अपना पवित्र यश फैलाया और मुझ दीन, पापी, बुद्धिहीन और जातिहीनपर बहुत प्रकारसे कृपा की॥ २॥

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा॥ ३॥

अब हे प्रभु! इस दासके घरको पवित्र कीजिये और वहाँ चलकर स्नान कीजिये, जिससे युद्धकी थकावट दूर हो जाय। हे कृपालु! खजाना, महल और सम्पत्तिका निरीक्षणकर प्रसन्नतापूर्वक वानरोंको दीजिये॥ ३॥

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ॥
सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥ ४॥

हे नाथ! मुझे सब प्रकारसे अपना लीजिये और फिर हे प्रभो! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरीको पधारिये। विभीषणजीके कोमल वचन सुनते ही दीनदयालु प्रभुके दोनों

विशाल नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ ४ ॥

दो०—तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ॥११६(क)॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे भाई ! सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह बात सच है। पर भरतकी दशा याद करके मुझे एक-एक पल कल्पके समान बीत रहा है ॥ ११६ (क) ॥

तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि ॥११६(ख)॥

तपस्वीके वेषमें कृश (दुबले) शरीरसे निरन्तर मेरा नाम-जप कर रहे हैं। हे सखा ! वही उपाय करो, जिससे मैं जल्दी-से-जल्दी उन्हें देख सकूँ। मैं तुमसे निहोरा (अनुरोध) करता हूँ ॥ ११६ (ख) ॥

बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर ॥११६(ग)॥

यदि अवधि बीत जानेपर जाता हूँ तो भाईको जीता न पाऊँगा। छोटे भाई भरतजीकी प्रीतिका स्मरण करके प्रभुका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है ॥ ११६ (ग) ॥

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ॥११६(घ)॥

[श्रीरामजीने फिर कहा—] हे विभीषण ! तुम कल्पभर राज्य करना, मनमें मेरा निरन्तर स्मरण करते रहना। फिर तुम मेरे उस धामको पा जाओगे, जहाँ सब संत जाते हैं ॥ ११६ (घ) ॥

चौ०—सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥
बानर भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनते ही विभीषणजीने हर्षित होकर कृपाके धाम श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये। सभी वानर-भालू हर्षित हो गये और प्रभुके चरण पकड़कर उनके निर्मल गुणोंका बखान करने लगे ॥ १ ॥

बहुरि बिभीषन भवन सिधायो। मनि गन बसन बिमान भरायो ॥
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा ॥ २ ॥

फिर विभीषणजी महलको गये और उन्होंने मणियोंके समूहों (रत्नों) से और वस्त्रोंसे विमानको भर लिया। फिर उस पुष्पकविमानको लाकर प्रभुके सामने रक्खा। तब कृपासागर श्रीरामजीने हँसकर कहा—॥ २ ॥

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन ॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही ॥ ३ ॥

हे सखा विभीषण! सुनो, विमानपर चढ़कर, आकाशमें जाकर वस्त्रों और गहनोंको बरसा दो। तब (आज्ञा सुनते) ही विभीषणजीने आकाशमें जाकर सब मणियों और वस्त्रोंको बरसा दिया ॥ ३ ॥

जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता ॥ ४ ॥

जिसके मनको जो अच्छा लगता है, वह वही ले लेता है। मणियोंको मुँहमें लेकर वानर फिर उन्हें खानेकी चीज न समझकर उगल देते हैं। यह तमाशा देखकर परम विनोदी और कृपाके धाम श्रीरामजी सीताजी और लक्ष्मणजीसहित हँसने लगे ॥ ४ ॥

दो०—मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद ॥११७(क)॥

जिनको मुनि ध्यानमें भी नहीं पाते, जिन्हें वेद 'नेति-नेति' कहते हैं, वे ही कृपाके समुद्र श्रीरामजी वानरोंके साथ अनेकों प्रकारके विनोद कर रहे हैं ॥ ११७ (क) ॥

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥११७(ख)॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! अनेकों प्रकारके योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करनेपर भी श्रीरामचन्द्रजी वैसी कृपा नहीं करते, जैसी अनन्य प्रेम होनेपर करते हैं ॥ ११७ (ख) ॥

चौ०—भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए ॥
नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ॥ १ ॥

भालुओं और वानरोंने कपड़े-गहने पाये और उन्हें पहन-पहनकर वे श्रीरघुनाथजीके पास आये। अनेकों जातियोंके वानरोंको देखकर कोसलपति श्रीरामजी बार-बार हँस रहे हैं ॥ १ ॥

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया ॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मारयो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सारयो ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीने कृपादृष्टिसे देखकर सबपर दया की। फिर वे कोमल वचन बोले—हे भाइयो! तुम्हारे ही बलसे मैंने रावणको मारा और फिर विभीषणका राजतिलक किया ॥ २ ॥

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू ॥
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर ॥ ३ ॥

अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसीसे डरना नहीं। ये वचन सुनते ही सब वानर प्रेममें विह्वल होकर हाथ जोड़कर आदर-पूर्वक बोले—॥ ३ ॥

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरें होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥ ४ ॥

प्रभो! आप जो कुछ भी कहें, आपको सब सोहता है। पर आपके वचन सुनकर हमको मोह होता है। हे रघुनाथजी! आप तीनों लोकोंके ईश्वर हैं। हम वानरोंको दीन जानकर ही आपने सनाथ (कृतार्थ) किया है॥ ४ ॥

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
देखि राम रुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा॥ ५ ॥

प्रभुके [ऐसे] वचन सुनकर हम लाजके मारे मरे जा रहे हैं। कहीं मच्छर भी गरुड़का हित कर सकते हैं? श्रीरामजीका रुख देखकर रीछ-वानर प्रेममें मग्न हो गये। उनकी घर जानेकी इच्छा नहीं है॥ ५ ॥

दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि॥११८(क)॥

परंतु प्रभुकी प्रेरणा (आज्ञा) से सब वानर-भालू श्रीरामजीके रूपको हृदयमें रखकर और अनेकों प्रकारसे विनती करके हर्ष और विषादसहित घरको चले॥ ११८(क)॥

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥११८(ख)॥

वानरराज सुग्रीव, नील, ऋक्षराज जाम्बवान्, अंगद, नल और हनुमान् तथा विभीषणसहित और जो बलवान् वानर सेनापति हैं, ॥ ११८ (ख) ॥

कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥११८(ग)॥

वे कुछ नहीं कह सकते; प्रेमवश नेत्रोंमें जल भर-भरकर, नेत्रोंका पलक मारना छोड़कर (टकटकी लगाये) सम्मुख होकर श्रीरामजीकी ओर देख रहे हैं॥ ११८(ग)॥

चौ०—अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीने उनका अतिशय प्रेम देखकर सबको विमानपर चढ़ा लिया। तदनन्तर मन-ही-मन विप्र-चरणोंमें सिर नवाकर उत्तर दिशाकी ओर विमान चलाया॥१॥

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर॥ २ ॥

विमानके चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई श्रीरघुवीरकी जय कह रहे हैं। विमानमें एक अत्यन्त ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उसपर सीताजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हो गये ॥ २ ॥

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥ ३ ॥

पत्नीसहित श्रीरामजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरुके शिखरपर बिजली-सहित श्याम मेघ हो। सुन्दर विमान बड़ी शीघ्रतासे चला। देवता हर्षित हुए और उन्होंने फूलोंकी वर्षा की ॥ ३ ॥

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥ ४ ॥

अत्यन्त सुख देनेवाली तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्धित) वायु चलने लगी। समुद्र, तालाब और नदियोंका जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुन्दर शकुन होने लगे। सबके मन प्रसन्न हैं, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं ॥ ४ ॥

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥ ५ ॥

श्रीरघुवीरने कहा—हे सीते! रणभूमि देखो। लक्ष्मणने यहाँ इन्द्रको जीतनेवाले मेघनादको मारा था। हनुमान् और अंगदके मारे हुए ये भारी-भारी निशाचर रणभूमिमें पड़े हैं ॥ ५ ॥

कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥ ६ ॥

देवताओं और मुनियोंको दुःख देनेवाले कुम्भकर्ण और रावण दोनों भाई यहाँ मारे गये।

दो०—इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥११९(क)॥

मैंने यहाँ पुल बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम श्रीशिवजीकी स्थापना की। तदनन्तर कृपानिधान श्रीरामजीने सीताजीसहित श्रीरामेश्वर महादेवको प्रणाम किया ॥ ११९ (क) ॥

जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम॥११९(ख)॥

वनमें जहाँ-जहाँ करुणासागर श्रीरामचन्द्रजीने निवास और विश्राम किया था, वे सब स्थान प्रभुने जानकीजीको दिखलाये और सबके नाम बतलाये ॥ ११९ (ख) ॥

चौ०—तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए रामु सब कें अस्थाना॥ १ ॥

विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया जहाँ परम सुन्दर दण्डकवन था और अगस्त्य आदि बहुत-से मुनिराज रहते थे। श्रीरामजी इन सबके स्थानोंमें गये ॥ १ ॥

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आए जगदीसा ॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमानु तहाँ ते चोखा ॥ २ ॥

सम्पूर्ण ऋषियोंसे आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर श्रीरामजी चित्रकूट आये। वहाँ मुनियोंको संतुष्ट किया। [फिर] विमान वहाँसे आगे तेजीके साथ चला ॥ २ ॥

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई ॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामजीने जानकीजीको कलियुगके पापोंका हरण करनेवाली सुहावनी यमुनाजीके दर्शन कराये। फिर पवित्र गङ्गाजीके दर्शन किये। श्रीरामजीने कहा—हे सीते! इन्हें प्रणाम करो ॥ ३ ॥

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा ॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी ॥ ४ ॥
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि ॥ ५ ॥

फिर तीर्थराज प्रयागको देखो, जिसके दर्शनसे ही करोड़ों जन्मोंके पाप भाग जाते हैं। फिर परम पवित्र त्रिवेणीजीके दर्शन करो, जो शोकोंको हरनेवाली और श्रीहरिके परम धाम [पहुँचने] के लिये सीढ़ीके समान है। फिर अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरीके दर्शन करो, जो तीनों प्रकारके तापों और भव (आवागमनरूपी) रोगका नाश करनेवाली है ॥ ४-५ ॥

दो०—सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥१२०(क)॥

यों कहकर कृपालु श्रीरामजीने सीताजीसहित अवधपुरीको प्रणाम किया। सजल नेत्र और पुलकितशरीर होकर श्रीरामजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं ॥ १२० (क) ॥

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥१२०(ख)॥

फिर त्रिवेणीमें आकर प्रभुने हर्षित होकर स्नान किया और वानरोंसहित ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारके दान दिये ॥ १२० (ख) ॥

चौ०—प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥ १ ॥

तदनन्तर प्रभुने हनुमान्‌जीको समझाकर कहा—तुम ब्रह्मचारीका रूप धरकर अवधपुरीको जाओ। भरतको हमारी कुशल सुनाना और उनका समाचार लेकर चले आना ॥

लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठाकर कुशल पूछी। वह विनती करने लगा—आपके जो चरणकमल ब्रह्माजी और शंकरजीसे सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब सकुशल हूँ। हे सुखधाम! हे पूर्णकाम श्रीरामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ॥ १॥

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥ २॥

सब प्रकारसे नीच उस निषादको भगवान्‌ने भरतजीकी भाँति हृदयसे लगा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं—इस मन्दबुद्धिने (मैंने) मोहवश उस प्रभुको भुला दिया। रावणके शत्रुका यह पवित्र करनेवाला चरित्र सदा ही श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति उत्पन्न करनेवाला है। यह कामादि विकारोंका हरनेवाला और [भगवान्‌के स्वरूपका] विशेष ज्ञान उत्पन्न करनेवाला है। देवता, सिद्ध और मुनि आनन्दित होकर इसे गाते हैं॥ २॥

दो०—समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥ १२१(क)॥

जो सुजान लोग श्रीरघुवीरकी समरविजयसम्बन्धी लीलाको सुनते हैं, उनको भगवान् नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं॥ १२१ (क)॥

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥ १२१(ख)॥

अरे मन! विचार करके देख! यह कलिकाल पापोंका घर है। इसमें श्रीरघुनाथजीके नामको छोड़कर [पापोंसे बचनेके लिये] दूसरा कोई आधार नहीं है॥ १२१ (ख)॥

मासपारायण, सत्ताईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने षष्ठः सोपानः समाप्तः

कलियुगके समस्त पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह छठा सोपान समाप्त हुआ।

(लंकाकाण्ड समाप्त)



सुरेश कुमार जैन

विषय-सूची

लियो हृदयँ लाइ कृपा निधान सुजान रायँ रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेव्य जे।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते॥



पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)